तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

श्री वेंकटेश्वर बालमंदिर न्यास

बच्चे, भगवान के प्रतिबिम्ब माने जाते हैं। अनाथ बच्चों को सम्मानपूर्वक आश्रय देने के लिए, मानवतावादी दृष्टि के साथ, १९४३ में, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने श्री वेंकटेश्वर बालमंदिर न्यास को स्थापित किया। जिन बच्चों ने अपने माँ-बाप खो दिये, आर्थिक विपन्नता के कारण जो माँ-बाप अपने बच्चों का दायित्व लेने में असमर्थ हैं, ऐसे बच्चों की रक्षा के लिए यह संस्था अपना हाथ बढ़ाती है। पढ़ाई के उपरांत उनको सभ्य समाज में सकुशल भेजती है। अबोध एवं व्यथित बच्चों को समुज्जवल भविष्य प्रदान करने के लिए करुणार्द्र हृदयी दाता वसुधैव कुटुम्बकम् के बल पर श्री वेंकटेश्वर बालमंदिर को दान दें और भाग्यप्रदाता कलियुग दैव का अनुग्रह प्राप्त करें।

दाताओं को अनुभाग 80(G) के आधार पर आयकर की छूट मिलती है

माँग ड्राफ़्ट/चेक भेजने का पताः

मुख्य गणांकाधिकारी

ति.ति.दे, प्रशासनिक भवन

के.टी.रोड, तिरुपति - 517501

फ़ोन नंः 0877-2264249

अतिरिक्त समाचार के लिए इससे संपर्क कीजिएः

0877-2233333, 2264258

वेबसाईट: www.tirumala.org

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

श्री वेंकटेश्वर प्राणदान न्यास

हृदय, वृक्क, मस्तिष्क आदि कायांगों में जान लेवा व्याधि से पीडित निर्धन रोगियों को मुफ्त में चिकित्सा करने के लक्ष्य के साथ तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने 'श्री वेंकटेश्वर प्राण दान न्यास (ट्रस्ट)' की स्थापना की। 'श्री वेंकटेश्वर प्राणदान न्यास' के लिए स्वेच्छापूर्वक दान दीजिए।

भारत के आयकर विभाग के अनुभाग 80(G)/35, (i), (ii) के अनुसार दाता को आयकर से छूट मिलती है।

माँग ड्राफ़्ट/चेक को निम्न पते पर भेजेंः

मुख्य गणांकाधिकारी

ति.ति.दे. प्रशासनिक भवन

के.टी.रोड, तिरुपति - 517501

फ़ोन : 0877-2264249

अतिरिक्त समाचार के लिए, इनको फ़ोन करें

0877-2277777, 0877-2264258

वेबसाईट : www.tirumala.org

''तिरुमल क्षेत्र दर्शिनी ग्रंथमाला''

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान का अवतार

हिन्दी अनुवाद

डॉ. यद्दनपूडि वेङ्कटरमण राव

मूल लेखक

डॉ. समुद्राल लक्ष्मणय्या

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति
2017

Hindi Translation
Dr. Yaddanapudi Venkataramana Rao

Telugu Original
Dr. Samudrala Lakshmanaiah

T.T.D. Religious Publications Series No. 1268
©All Rights Reserved

First Print - 2017

Copies : 500

Published by
Sri Anil Kumar Singhal, I.A.S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

D.T.P:
Office of the Publications Division
T.T.D, Tirupati.

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press
Tirupati

पुरोवाक्

''वेङ्कटाद्रिसमम् स्थानम् ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ।
वेङ्कटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति'' ।।

अर्थात वेङ्कटाद्रि पर्वत-श्रृंखला के समान दूसरा कोई तीर्थ-क्षेत्र इस पूरे ब्रह्मांड में नहीं है। उसी प्रकार वेङ्कटेश्वर के सम-तुल्य भगवान अब तक कहीं नहीं हुए हैं। आगे भी नहीं होंगे।

कलियुग वैकुंठ के रूप में सुशोभित श्रीवेङ्कटाद्रि पर अखिलांड कोटि ब्रह्मांड नायक श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी अवतार लेकर नित्य अपने भक्तों को दिव्य दर्शन देते हुए उनके जन्म को धन्य बना रहे हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी की दिव्य मंगल मर्ति के दर्शन को एक पल के लिए ही सही दर्शन करके अपने को धन्य बनाने के लिए हजारों की संख्या में नित्य प्रति, यात्री इस क्षेत्र की यात्रा करते हैं।

स्मरण करने मात्र से दर्शन देनेवाले, भक्तों की कामनाओं की पूर्ति करनेवाले वरदराय श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी विराजमान इस क्षेत्र में स्वामी की दिव्य मंगल मूर्ति, स्वामी की पुष्करिणी, दिव्य-पवित्र तीर्थ, स्वामी के नित्य अतिवैभव कैंकर्य, स्वामी के ब्रह्मोत्सव आदि विशेषताओं को भक्तों तक पहुँचाने के संकल्प से तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, ने ''तिरुमल क्षेत्र दर्शिनी'' के नाम से एक ग्रंथ-माला आरंभ करके पंडित-विद्वानों से ग्रंथों की रचना करवाकर प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।

इस योजना के अंतर्गत ही ''श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान का अवतार'' शीर्षक यह पुस्तक है । इसके मूल लेखक डॉ. समुद्राल लक्ष्मणय्या हैं।

तेलुगु मूल का हिन्दी रूपांतरण डॉ. यद्दनपूडि वेङ्कटरमण राव ने किया है । आशा है कि यह पुस्तक भक्तों द्वारा समादृत होगी । भगवान बालाजी के अवतार वैभव की जानकारी प्राप्त कर भक्त अवश्य धन्य होंगे ।

सदा श्रीहरि की सेवा में

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्,
तिरुपति

विषयानुक्रमणिका

प्रथम प्रकरण

1. दशावतार 1
2. पाँच स्वरूप 4
3. अर्चावतार की विशिष्टता 5
4. श्रीवेङ्कटेश्वर का अर्चावतार 5

द्वितीय प्रकरण

5. नारद का प्रश्न 7
6. त्रिमूर्तियों की परीक्षा 8
7. श्रीलक्ष्मी का वैकुण्ठ छोडना 10
8. श्रीमहाविष्णु का वेङ्कटाचल आगमन 11
9. ब्रह्मा और शिव के गो - वत्स रूप 12
10. बिना दूध की गाय 13
11. गोपालक की मृत्यु 14
12. चोल राजा को शाप 14
13. इमली का पेड और बिल (वल्मीक) 16
14. वराह स्वामी से मिलना 17
15. वकुलमालिका 18
16. आकाश राजा और तोंडमान 19
17. पद्मावती का आविर्भाव 20
18. पद्मावती का वन - विहार 21
19. श्रीनिवास का आखेट और पद्मावती का दर्शन 21

20. पद्मावती का परिताप 23
21. वेदवती का वृत्तांत 24
22. वकुला माता का नारायणपुर जाना 27

तृतीय प्रकरण

23. पुरंद स्त्री के वेष में श्रीनिवास 29
24. पुरंद स्त्री की भविष्यवाणी 30
25. धरणी देवी से वकुलमालिका की बातचीत 31
26. पद्मावती - श्रीनिवास की विवाह - पत्रिका 32
27. ब्रह्मा - रुद्रादि का आगमन 34
28. श्रीलक्ष्मी देवी का आना 35
29. ऋण - पत्र (कर्ज पत्र) 36
30. पद्मावती - श्रीनिवास का विवाह - वैभव 37
31. अगस्त्याश्रम वास 39
32. वसुदास और तोंडमान के बीच युद्ध 39
33. विश्वरूप प्रदर्शन 42
34. मंदिर - निर्माण 42
35. आनंद निलय प्रवेश 42
36. भक्त भीम को सायुज्य 44
37. तोंडमान को सारूप्य - प्रदान 46
38. अर्चामूर्ति का आविर्भाव 47

चतुर्थ प्रकरण

39. लक्ष्मी देवी को लेकर श्रीवेङ्कटेश्वर की चिंता 49
40. श्रीलक्ष्मी का पाताल में पहुँचना 51

41. आकाशवाणी 51
42. श्रीवेङ्कटेश्वर की तपस्या 52
43. कपिल महामुनि के हित - वचन 53
44. व्यूह लक्ष्मी का आविर्भाव 55
45. विष्णु वक्षःस्थलवासिनी लक्ष्मी 56
46. आनंदनिलय में श्रीलक्ष्मी और श्रीवेङ्कटेश्वर 58
47. लक्ष्मी - वेङ्कटेश्वर का सरस - संभाषण 58
48. वीरलक्ष्मी का शुकाश्रम में विलसना 62
49. पद्मतीर्थ की विशिष्टता 63

प्रथम प्रकरण

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

धर्म को क्षीण दशा प्राप्त होने पर, अधर्म का सिर उठाने पर अपने आप को सृजित करने (अवतरित होने) की बात भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने स्वयं स्पष्ट की है। शिष्टों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड द्वारा धर्म की स्थापना के लिए विष्णु भगवान इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं।

भगवान का अवतरण चाहे किसी रूप में हो, उसे अवतार ही कहते हैं। अवतार शब्द के अनेक अर्थ हैं जैसे 'उतर आना', 'सरोवर', 'नदी तट' आदि। विश्वव्यापी परमात्मा का अपने भक्त समूह पर अनुग्रह बरसाने के लिए ही सगुण - साकार रूप में पृथ्वी पर उतर आना ही अवतरण है। उस स्वरूप को ही अवतार रूप कहते हैं।

1. दशावतार

पुराण वाङ्मय में भगवान के दस अवतारों का विस्तृत विवरण मिलता है। लोक कल्याण के लिए ही परमपुरुष के दस अवतार हैं। इसका निरुपण निम्न श्लोक करता है -

परोपकृति कैवल्ये तुलयित्वा जगद्गुरुः ।
गुर्वीं चोपकृतिं मत्वा अवतारान् दशाग्रहीत ।।

जगत के गुरु श्रीमन्नारायण के मन में ही एक बार एक विशेष शंका उदित हो गयी। वैकुण्ठवासी विष्णु की शंका थी कि ''श्रीदेवी की सेवाएँ

लेते हुए सुखी जीवन बिताना क्या ठीक है ? अथवा इस सृष्टि में व्यथाएँ भोगनेवाले प्राणियों के दुखों को दूर कर उनकी सहायता करना ठीक है ?''

इन दोनों बातों को अपनी विचार - तुला में उन्होंने तोला। तोलने पर परोपकार की ओर सुई झुकी। भगवान ने तुरंत निर्णय लिया। परोपकारार्थ उन्होंने क्रमशः दस अवतार लिए। दुष्टों को दण्डित किया और शिष्टों की रक्षा की। बस इससे धर्म की स्थापना होती रही।

मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम (श्रीकृष्ण), बुद्ध और कल्कि - ये ही पुराण प्रसिद्ध दस अवतार हैं। ये ही नहीं सुयज्ञ, कपिल, दत्तात्रेय, सनकादि मुनि, नर - नारायण, ध्रुव, पृथु, वृषभ, सुग्रीव, हंस, मनु, धन्वंतरी, व्यास आदि अन्य कुछ अवतारों का उल्लेख भी श्रीमद्भागवत् पुराण में मिलता है।

उक्त अवतारों के साथ साथ भागवत पुराण में असंख्य लीलावतारों का भी विवरण मिलता है। ''धरती पर व्याप्त रज कणों (धूलि कणों) की गणना भी सुसाध्य हो सकती है, लेकिन परमात्मा के अद्भुत लीलावारी कर्मों की गिनती असंभव है।'' - (भागवत् - 2 / 199)

विष्णु के अवतारों का ही पुराणों में विशिष्ट रूप से वर्णन मिलता है। कुछ लोगों का प्रश्न है कि क्या शिवजी के अवतार नहीं हैं ? शिवजी के अवतारों के संबन्ध में कुछ शिव - पुराणों में अवश्य उल्लेख हैं। परन्तु लयकर्ता शिव से अधिक पोषणकर्ता विष्णु पर ही जगत की रक्षा का कर्तव्य अधिक है। इसलिए उनके अवतार ही पुराणों में प्रसिद्ध हुए हैं। ऐसा सोचना ही उचित होगा।

धर्माधर्मों से जुडे भगवान के अवतारों पर भक्त प्रवर अन्नमाचार्य ने कुछ चमत्कार जोडकर कहा है -

अडरि धर्ममु सेडि - अधर्ममैन मेलु
वेडगु मुनुलु विन्न - विन्तुरु नीकु,
तडवि धर्ममु निल्प - धरणि बुट्टुदु वीवु
बडि निन्नु सेविन्चि - ब्रदुकुदु मपुडे - (2/161)

बिगडे धर्म से अधर्म ही है भला
यही बताता मुनि गण बारंबार।
धर्म को बचाने धरती पर उतर आता तू
तेरी सेवा के आतुर हो जीते हम सब ॥

ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, सौंदर्य, ज्ञान, वैराग्य आदि सद्गुणों को ही अवतार सुस्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं।

कृत युग में भगवान विष्णु के पाँच अवतार हुए हैं - मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह और वामन। त्रेता युग के हैं परशुराम और श्रीराम के अवतार। द्वापर में बलराम और श्रीकृष्ण के अवतार प्रस्तुत हुए हैं। कलियुग में बुद्ध और कल्कि अवतारों का उल्लेख है। इनमें बुद्ध का अवतरण हुआ है और कल्कि अवतार का होना है। यह पुराण घोषित करते हैं।

कृत युग के संबन्ध में धारणा है कि धर्म चार पैरों पर चलता है। ऐसी स्थिति में भगवान को पाँच बार अवतार क्यों लेना पडा ? यह प्रश्न अनेकों के मन में उभरा है। शायद उस युग में धर्म को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचा हो। उसके लिए जागरूकता की आवश्यकता थी। इसीलिए भगवान ने पाँच बार अवतार लिया है।

बुद्धावतार के संदर्भ में मतभेद अवश्य हैं। पुराणोक्त बुद्ध ही बुद्ध हैं - यह कुछ लोगों की मान्यता है। ऐतिहासिक बुद्ध ही बुद्ध हैं - यह

अन्यों की मान्यता है । बलराम और श्रीकृष्ण को अलग अलग अवतारों के रूप में माननेवाले बुद्ध को अवतारी पुरुष के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं ।

अवतारों के अनेक भेद हैं - अंशावतार, पूर्णावतार, कलावतार, लीलावतार, दिव्यावतार, भौमावतार, अर्चावतार, अंतर्याम्यवतार, विभवावतार, कल्याणगुणावतार आदि भी अवतारों के अंतर्गत गिने जाते हैं । ये असंख्य हैं ।

2. पाँच स्वरूप

भगवान के पाँच स्वरूप माने गये हैं - पर स्वरूप, व्यूह स्वरूप, विभव स्वरूप, अंतर्यामी स्वरूप और अर्चा स्वरूप । इनमें अर्चा स्वरूप ही अन्तिम माना जाता है ।

1. श्री वैकुण्ठ में नित्य सूरियों, मुक्त पुरुषों से सेवित हो शेष तल्प (आदि शेष) पर श्रीदेवी और भूदेवी से युक्त भगवान विष्णु का स्वरूप ही 'पर स्वरूप' है ।

2. सृष्टि, स्थिति और संहार क्रियाओं को निभाने और भक्तों पर अनुकंपा बरसाने के लिए उन्मुख स्वरूप ही 'व्यूह स्वरूप' है । वैखानस आगम स्पष्ट करता है कि यह स्वरूप विष्णु, पुरुष, सत्य, अच्युत और अनिरुद्ध रूपों में पाँच प्रकार से युक्त होता है ।

3. दुष्टों को दण्डित करने और शिष्टों की रक्षा करने के लिए धरित राम, कृष्ण आदि अवतार 'विभव स्वरूप' हैं ।

4. ज्ञान मात्र के लिए गोचर हो सकल जीवों के हृदय कमल कोषों में अन्तर्नियंता के रूप में विलसनेवाला स्वरूप ही 'अन्तर्यामी स्वरूप' है ।

5. देश और काल आदि के नियमों से परे होकर आश्रित भक्तों के सम्मत लोह, शिला आदि द्रव्यों में आविर्भूत होकर घरों, मंदिरों और गुफाओं में विराजमान होनेवाला स्वरूप ही 'अर्चा स्वरूप' है ।

3. अर्चावतार की विशिष्टता

''अर्चावतारस्सर्वेषां बान्धवो बन्धुवत्सलः'' - अर्चा स्वरूप सबका बन्धु है । सौशील्य, वात्सल्य, स्वामित्व आदि गुणों से यह विलसित है।

यह स्वरूप चार प्रकार का होता है - स्वयं व्यक्त स्वरूप, दिव्य स्वरूप, सैद्ध स्वरूप और मानुषी स्वरूप ।

अपने आप व्यक्त (स्वयंव्यक्त) अर्चामूर्ति को स्वयंव्यक्त स्वरूप कहते हैं । देवताओं के द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ, दिव्यस्वरूपा मानी जाती हैं । योगी, सिद्ध या महापुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ सैद्ध स्वरूपा हैं । मनुष्यों (भक्तों) द्वारा आगमोक्त रीति से प्रतिष्ठित मूर्तियाँ मानुषी स्वरूपा हैं । ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ इन प्रकारों में ही समाहित होती हैं ।

4. श्रीवेङ्कटेश्वर का अर्चावतार

भक्तों का विश्वास है कि कलियुग में वेङ्कटाचल पर विलसित अर्चामूर्ति स्वयं व्यक्त मूर्ति है । हर दिन असंख्य भक्त संसार की चारों दिशाओं से पधार कर भगवान का दिव्य दर्शन करते हैं । दूसरे शब्दों में कहा जाये तो दुनिया भर के भक्तों को इस रूप में यह मूर्ति आकर्षित करती है । इसीलिए

वेङ्कटाद्रिसमम् स्थानम् ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ।
वेङ्कटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति ।।

उक्त पुराणोक्ति के अनुसार वेङ्कटाद्रि के समान पवित्र स्थल इस ब्रह्माण्ड में दूसरा नहीं है । इसी तरह श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के समकक्षी देव भी आज तक अवतरित नहीं हुए और आगे होगा भी नहीं है । यह भक्तों का प्रगाढ़ विश्वास है ।

'अरयि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे' - यह ऋग्वेद का मंत्र है । कुछ व्याख्याताओं के अनुसार 'जीवन में विकट स्थितियों के उभरने पर श्रीनिवास विराजित वेङ्कटगिरि जाओ' वाला अर्थ इस मंत्र में छिपा है । भविष्योत्तर पुराण का निम्न श्लोक भी इसी बात का समर्थन करता है -

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छेति तं विदुः ।
एवं वेदमयः साक्षाद्गिरीन्द्रः पन्नगाचलः ।।

आपद्बांधव, अनाथरक्षक, कलियुग प्रत्यक्ष दैवम्, सप्तगिरीश, भक्तों की पुकार पर स्पंदित होनेवाले भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर तिरुमल गिरि पर विलसित हैं । अमित दया एवं अपार कृपा से आश्रित जनों की रक्षा कर रहे हैं ।

श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान ने विकृति नाम संवत्सर में अश्विनी नक्षत्र युक्त पाड्यमी गुरुवार के दिन पर आनंद निलय में प्रवेश किया है । (श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यम् - 5 / 293)

कमर पर वाम हस्त (बायें हाथ) को रखकर विराजमान भगवान भक्तों को निर्देश दे रहे हैं कि उनकी आराधना करनेवाले भक्तों के लिए परिवार पारावार (कुटुम्ब रूपी सागर) की थाह केवल कमर भर की ही है । इसी प्रकार अपने दक्षिण हस्त (दायें हाथ) से अपने पैरों की ओर संकेत करते हुए जता रहे हैं कि वे शरणागतों के लिए मोक्ष प्रदायक हैं।

* * *

द्वितीय प्रकरण

ऐसे श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के दिव्यावतार से संबन्धित इतिहास और पुराण कथित विवरणों को संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे ।

5. नारद का प्रश्न

स्थान नैमिशारण्य था । वहाँ पर शौनकादि मुनि सूत महर्षि से पुराण गाथाओं का श्रवण कर रहे थे । उस क्रम में सूत जी वराह पुराण गाथा का विवरण सुना रहे थे । उसमें श्रीवेङ्कटाचल का संदर्भ प्रमुख रूप से उभर आया ।

गाथा श्रवण के पश्चात् मुनियों ने सूत जी से प्रश्न किया - ''हे महापुरुष ! इस भूतल पर वेङ्कटाद्रि किस युग में ख्यात होगा ?''

तब सूत मुनि ने उत्तर में कहा - ''हे मुनिप्रवर ! आपका प्रश्न समुचित है । प्रश्न के उत्तर के स्थान पर मैं वेङ्कटाचल की प्रशस्ति और उस पर विलसित श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान के दिव्य वृत्तांत को बताऊँगा । सावधानी से सुनियेगा ।''

''ब्रह्मा के मानस पुत्र नारद एक बार भूलोक पहुँचकर वहाँ के गांगा नदी तट पर गये । वहाँ कश्यप आदि महर्षि एक यज्ञ का निर्वहण कर रहे थे । सबने मिलकर देवर्षि नारद जी का सम्मान किया । पूजा की । नारद के आगमन पर संतोष प्रकट किया । तब नारद जी ने उनसे पूछा - ''हे महर्षि गण ! आप लोग सब मिलकर अत्यंत श्रद्धा के साथ इस पावन परिसर में यज्ञ संपन्न कर रहे हैं । इस यज्ञ फल को योग्य व्यक्ति को अर्पित करना है न ? यज्ञ फल आप लोग किसे अर्पित करना चाहते हैं ?''

नारद जी की बात सुनकर भृगु आदि ऋषि एक दूसरे के मुँह की ओर देखने लगे। वे यज्ञ फल भोक्ता का निर्णय नहीं कर सके। चुप ही रह गये। तब नारद जी ने अपनी वीणा पर अष्टाक्षरी मंत्र बजाते हुए कहा - ''हे महर्षि ! आप यज्ञ यागादि क्रतुओं का निर्वाह कर प्रजा - संतति का विकास तो कर रहे हैं। यह ठीक ही है। अब आपको त्रिमूर्तियों में मोक्ष प्रदाता का चयन करना है। इस संदर्भ में समुचित सोच - विचार के बाद ही निर्णय लेना है। उचित निर्णय के बाद यज्ञ फल को पाने योग्य देव का निर्णय आपको लेना होगा।'' कहते हुए वीणा बजाते - बजाते वहाँ से निकल पडे।

6. त्रिमूर्तियों की परीक्षा

नारद की सूचना ऋषियों को अच्छी लगी। हरि, हर और ब्रह्मा में योग्य देव चुनने का विचार उभरा। त्रिमूर्तियों में कौन देव मोक्ष प्रदायक हैं ? कौन देव यज्ञ फल प्राप्त करने योग्य हैं ? इसकी परीक्षा लेनी होगी। इसकी परीक्षा लेने के लिए ऋषि समूह ने भृगु को ही उपयुक्त माना। सृष्टि - स्थिति - लय कर्त्ता त्रिमूर्तियों में मोक्ष प्रदान करनेवाले और यज्ञ फल पाने योग्य का निर्णय करने का दायित्व भृगु महर्षि को सौंपा। परीक्षार्थ भृगु निकले।

त्रिमूर्तियों की परीक्षा का दायित्व संभालने के क्रम में भृगु महर्षि पहले सत्यलोक पहुँचे। वहाँ पद्मसंभव ब्रह्मा का दर्शन कर नमन किया। चतुर्मुख से आसन ग्रहण की आज्ञा पाने से पहले ही भृगु उनके सामने एक आसन रिक्त पाकर बैठ गये। इस पर ब्रह्मा क्रुद्ध हो गये। मुनि से कुछ न बोले। मौन धारण कर रह गये बह्मा जी।

इस सबको देखकर भृगु ने समझा कि ब्रह्मा रजोगुण स्वभावी हैं और वे मोक्ष प्रदान करने की योग्यता से रिक्त हैं। यह सोचकर भृगु

ने ब्रह्मा को शाप भी दे दिया कि उन्हें पृथ्वी पर मंदिर न हो। इस तरह ब्रह्मा के लिए मंदिर न बनेंगे और पूजाएँ भी नहीं। सत्य लोक से फिर भृगु कैलाश की ओर चले।

जिस समय पर भृगु कैलाश पहुँचे, उस समय शिवजी पार्वती से विलासरत थे। मुनि को देखकर पार्वती ने लज्जा का अनुभव किया। ''जब दंपति एकांत में रहते हैं, तब क्या कोई उस एकांत का भंग कर सकता है ?'' यह बात शंकर के मन में उठी। वे भी क्रुद्ध हो मौन ही रह गये।

भृगु महर्षि ने शिव जी का व्यवहार देखा। समझा कि शिवजी तमोगुण युक्त हैं। मुक्ति प्रदाता बन नहीं सकते। उनको भी भृगु ने एक शाप दिया कि ''शिव जी के लिंग रूप की पूजा ही होगी कभी मूर्ति के रूप में पूजा नहीं होगी।''

कैलाश से भृगु वैकुण्ठ पहुँचे। तब श्रीनिवास रमा समेत शेष तल्प पर शयनित थे। भृगु की ओर उनका ध्यान तुरंत नहीं गया। इस पर कुपित हो भृगु ने बिना कुछ सोचे - समझे विष्णु भगवान के वक्षःस्थल पर पदाघात किया। श्रीहरि तुरंत संभले। शास्त्रोक्त विधि से ऋषि का सत्कार किया। अर्चा की। मुनि के उस पैर को जिससे उन्होंने विष्णु के वक्षःस्थल पर पदाघात की, अपनी जाँघ पर रख लिया। अपने दोनों हाथों से दबाते हुए हरि ने मुनि से कहा -

''हे मुनीन्द्र ! मैं सोया हुआ था। आपके आगमन को पहचान नहीं पाया। इसके लिए मुझे क्षमा कीजिएगा। मुझ पर करुणा दिखाइए। मेरे कठोर वक्षःस्थल से टकराकर आपके मृदु चरण को कष्ट हो गया

होगा । आपके पद-पल्लव के कारण मुझे तो कुछ भी कष्ट नहीं हुआ ।'' - ये विष्णु भगवान के मृदु वचन थे ।

भगवान की बातें सुनकर भृगु प्रसन्न हुए । अपनी करनी पर उन्हें पश्चात्ताप भी हुआ । लज्जा का अनुभव किया । सिर झुकाकर भृगु बोले - ''हे देव देव ! आप सत्वगुण के प्रतिमूर्ति हैं । शाश्वत हैं । महोन्नत व्यक्तित्व से युक्त हैं ।''

भृगु ने मन में निश्चय कर लिया कि मोक्ष प्रदाता देव हरि मात्र हैं।

तदुपरान्त भृगु महर्षि गांगा तट लौट आए । वहाँ कश्यप आदि को संबोधित कर बोले - ''हे मुनिगण ! श्रीहरि ही शुद्ध सत्त्व स्वरूप हैं । मोक्ष प्रदान करने की योग्यता केवल उन्हीं में है ।'' उनसे परीक्षा विधान की बात जानकर मुनि समूह ने यज्ञ फल विष्णु भगवान को अर्पित किया । फल - स्वरूप सभी से विष्णु ध्यान परायण भी हुआ ।

7. श्रीलक्ष्मी का वैकुण्ठ छोडना

भृगु ने परीक्षा क्रम में विष्णु भगवान के वक्षःस्थल पर पदाघात की । विष्णु का वक्षःस्थल श्रीलक्ष्मी का वास स्थान है । इसलिए श्रीमहालक्ष्मी भृगु पर नारज हुईं । उन्होंने अपने पति देव श्रीहरि से कहा - ''हे नाथ ! आप परमपुरुष हैं । आप के वक्षःस्थल पर मैं हूँ । एक परपुरुष ने आकर आप पर पदाघात किया । उससे आप ने संतोष का अनुभव किया । लेकिन यह मेरे लिए असहनीय है । उस ऋषि पर मुझे क्रोध है । अगर मैं मुनि के बारे में कुछ कहूँ तो शायद आप को अच्छा नहीं लगेगा । अब मैं यहाँ रह नहीं पाऊँगी । तपस्या के लिए मैं जा रही हूँ । आपके पद युग्मों पर ध्यान रखकर तपस्या कर सकने का ज्ञान मुझे प्रदान कीजिएगा ।''

ऐसा कहकर निष्क्रमण करनेवाली लक्ष्मी को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास विष्णु भगवान ने किया । परन्तु वे शान्त हो नहीं पायी । उनको रोकने में श्रीपति असफल ही हुए । वे मौन ही रह गये।

श्रीमहालक्ष्मी वैकुण्ठ छोडकर भूलोक में कोलहापुर पहुँची । वहाँ की जनता ने उन्हें सभक्ति आदर दिया । उनकी पूजा - आराधना करने लगे । लक्ष्मी और नारायण के बीच के प्रणय - कलह ने श्रीलक्ष्मी को कोल्हापुरवासिनी बना दिया ।

सूत जी से कथा विवरण पाकर शौनक मुनि ने कहा - ''क्या श्रीमन्नारायण भू देवी और नीला देवी पर आकर्षित होकर पूर्ववत वैकुण्ठ में ही आनंद के साथ रहने लगे ? या श्रीलक्ष्मी के विरह में तप्त होकर दीन हो गये ? कृपा करके बताइएगा ।''

इस पर सूत मुनि ने कहा - ''विष्णु भगवान श्रीलक्ष्मी का वियोग सहन कर नहीं सके । विरह ताप से पीडित होकर उन्होंने सोचा -

''ओह ! नित्यानपायिनी रमा से मुझे वियोग संभव हुआ । कर्म की गति को कोई पार नहीं कर सकता । लक्ष्मी चाहे कहीं रहें, वे हमेशा मेरे हृदयांतराल में ही विलसित होकर रहेंगी । मुझे छोड जा नहीं सकती । मैं उनके हृदय में रहकर ही उन्हें अपने हृदय में रख पाऊँगा । उसी स्थिति में मैं जगत की रक्षा का निर्वाह कर पाऊँगा । लोक मर्यादा का अनुसरण करते हुए मुझे उनको ढूंढना है । अन्यथा लोक मुझे दयाहीन समझेगा ।''

8. श्रीमहाविष्णु का वेङ्कटाचल आगमन

इस प्रकार सोचकर श्रीहरि ने वैकुण्ठपुर की रक्षा का भार अपने रक्षा - परिवार के लोगों को सौंपकर भूदेवी और नीला देवी की रक्षा का

कर्तव्य भी उन पर डाल दिया । तत्पश्चात् उनसे कहा कि 'मैं श्री महालक्ष्मी का अन्वेषण कर ही लौटूँगा ।'' इसके बाद श्रीहरि वैकुण्ठ छोडकर भूलोक में वेङ्कटगिरि पहुँच गये ।

वेङ्कटाद्रि पर वराह स्वामी और स्वामी पुष्करिणी की दक्षिण दिशा में स्थित इमली के पेड के पास गये । उस वृक्ष के तले के बिल (वल्मीक) में प्रवेश किया । वहाँ अन्यों की दृष्टि से परे रहकर दस हजार वर्ष पर्यन्त तपस्यारत रह गये ।

भूलोक में अट्ठाईसवाँ द्वापर युग का अन्त हुआ । कलियुग का प्रवेश भी हो गया । ऐसे समय में धर्मात्मा चोल राजा धर्मानुशासित रूप से यहाँ शासन कर रहे थे ।

9. ब्रह्मा और शिव के गो - वत्स रूप

वैकुण्ठ को छोड कोल्हापुर पहुँची श्रीलक्ष्मी ने अच्छी तरह से समझा कि श्रीहरि उनको ढूँढते वैकुण्ठ छोड निकले हैं । वहाँ से निकलकर वेङ्कटाद्रि पहुँचकर इमली पेड के नीचे बिल में हैं । उनके योग - क्षेम को लेकर चिंता करने लगीं । फिर भी अपने निर्णय पर अटल रहने की ओर ही रह गयीं । लेकिन उनके हृदय में पति के अकेलेपन की कसक जगी । ग्वालिन के रूप में वे भी अकेली चोल राजा की नगरी में पहुँचीं । वहाँ चोल राजा की धर्मपत्नी के मंदिर के पास तक पहुँची ।

श्रीहरि के संबन्ध में लक्ष्मी देवी की चिंता को पहचानकर ब्रह्मा गो के रूप में और शिव बछडे के रूप में श्रीलक्ष्मी के पास पहुँच गये । उन दोनों को आदर भाव से समादृत कर, रमा (लक्ष्मी) गाय और बंछडे को बेचने का ऐलान करती हुई नगरी की गलियों में घूमने लगीं ।

श्रीलक्ष्मी की बातें सुनकर रानी ने अपनी संतान के लिए दूध की आवश्यकता को समझकर उपयुक्त मूल्य देकर गाय खरीदी । वल्मीक में रहनेवाले श्रीहरि को गाय दूध अवश्य देगी, समझकर श्रीलक्ष्मी कोलहापुर वापस चली गयीं ।

चोल राजा की गायों की झुंड में गाय के रूप में रहनेवाले ब्रह्मा प्रतिदिन वेङ्कटाचल पहुँचकर बिल (वल्मीक) वासी श्रीहरि के लिए दूध की धारा बहाने लगे । महाविष्णु ने दूध ग्रहण किया और ब्रह्मा तथा शिव की सराहना की । हर दिन क्रमशः उन्हें दूध मिलने लगा और भूख शमित होने लगी । भूलोक वासी होने पर क्षुधा पीडित होना ही होता है न !

10. बिना दूध की गाय

चोल राजा की रानी ने अपनी संतान के लिए दूध की आवश्यकता को ध्यान में रखकर गाय खरीदी थी । पर इस गाय के थन में दूध ही नहीं । रानी को आश्चर्य हुआ । क्योंकि थन देखने में एक घडे के आकार का था ! पर उसमें एक बूँद भर दूध भी नहीं !

तुरंत रानी ने गोपालक को बुलाया । पूछा कि ''क्यों गाय के थन में दूध नहीं हैं ? क्या तू दूध दुह ले रहा है ?'' रानी की धमकी सुनकर गोपालक डर गया । मिन्नत की - ''महारानी जी ! मैं ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ । शायद बछडे ने पूरा दूध पिया हो ।'' रानी ने कहा कि ''बछडा तो घर पर ही है न ? वह कैसे पियेगा ?'' रानी ने गोपालक को बाँध कर पिटवाया । आगे ऐसा नहीं होगा - ऐसा कहकर ही उसे छोडा ।

11. गोपालक की मृत्यु

गोपालक रोता हुआ घर पहुँचा । अगले दिन वह गाय के पीछे पीछे ही रहा । उसकी बात समझी । शेषाद्रि पर बिल में दूध गिराना देखा । क्रुद्ध हो गया । कुल्हाडी लेकर गाय के सिर पर पटकने उद्यत हो गया ।

श्रीविष्णु सब समझ गये । बिल से बाहर निकले । गाय को बचाना चाहते थे । बस गाय और कुल्हाडी के बीच अपना सिर रखा । स्वामी का सिर फूटा । सात ताड के पेडों की ऊँचाई तक रक्त उभर कर धरती पर गिरने लगा । उस भयानक दृश्य को देखकर गोपालक जमीन पर गिरा । उसके प्राण हवा में मिल गये ।

गाय पहाड से उतरकर चोल राजा की राजसभा में पहुँची । वहाँ धरती पर गिरकर लोटने लगी । जोर से रंभाने लगी । उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी । चोल राजा का मन पिघला । बस, राजा ने कारण जानना चाहा । नौकरों को गाय के साथ भेजा । गाय आगे आगे, नौकर पीछे पीछे । गाय वेङ्कटाद्रि पहुँची । एक बिल के पास रुकी । बिल के पास रक्त ! भयानक दृश्य ! देखकर राजा के नौकर डर गये । भागकर राजा के पास पहुँचे । समाचार राजा को सुनाया ।

राजा सपरिवार वेङ्कटाद्रि पहुँचे । घटना का निरीक्षण किया । वे भी सहम गये । रक्त का बहना, गोपालक की मृत्यु, गाय का परिताप - इन सबका कारण क्या हो सकता है ? राजा ने मंत्रियों से पूछा ।

12. चोल राजा को शाप

इतने में वल्मीक से रक्त सिक्त शरीरी श्रीनिवास शंख - चक्र धारी हो बाहर आये । राजा को देखकर कहा - ''अरे पापात्मा ! मैं इस बिल

में वास कर रहा हूँ । गाय प्रतिदिन मेरे बिल में दूध की धारा बहाकर मेरी भूख मिटा रही है । ऐसी गाय को गोपालक ने मारना चाहा । उसे बचाने मैं बाहर आया । गोपालक की वार मुझ पर पडी । इस तरह वह पापी हो गया । उसी कारण वह मरा है । मैं परदेशी हूँ । मेरा कोई रक्षक नहीं हैं । इस बिल में रहता हुआ समय काट रहा हूँ । गाय धर्म धेनु है । दूध देकर मेरी रक्षा कर रही है । इसे मारने दौडा था यह गोपालक । अपने पाप का फल उसने भोगा । वह तो तुम्हारा नौकर है । मुझे मारने का पाप तुम को भी मिलेगा । उसे तुम्हें भोगना ही होगा । आज से तुम पिशाच स्थिति पाओगे ।''

भागवान का शाप सुनकर राजा मूर्छित हो धरा पर गिरे । कुछ समय बाद संभल कर श्रीवेङ्कटेश्वर के सामने साष्टांग प्रणमित हो गये और दीन हो प्रार्थना की -

''हे भगवन ! मैं ने जान-बूझ कर कोई पाप नहीं किया । मुझपर रुष्ट होकर आपने इतना बडा शाप दिया । मैं प्रार्थना करता हूँ, हे भगवान ! शाप के परिहार का मार्ग बताइएगा ।''

इस पर श्रीनिवास ने कहा - ''हे राजन ! मेरा शाप व्यर्थ नहीं होगा । कलियुगान्त तक तुम्हें यह शाप भोगना ही पहेगा । आकाश राजा नामक एक राजा होंगे । वे अपनी पुत्री पद्मावती के साथ मेरा विवाह करायेंगे । उस समय आकाश राजा मेरे सिर पर एक किरीट धरेंगे । मेरे उस मुकुट धारण के साथ-साथ तुम्हारा शाप शमित होगा । तुम्हें सुख प्राप्त होगा ।''

शाप ग्रस्त हो चोल राजा वहाँ से निष्क्रमित हुए ।

श्रीनिवास फिर बिल में चले गये । लेकिन सिर दर्द असहनीय पाया । देव गुरु बृहस्पति का स्मरण किया । वे आ गये । उन्हें पूरा वृत्तांत सुनाया । बताया कि काल धर्म, कर्मगति और ग्रह स्थिति से यह सब घटित हुआ है । भगवान ने दवा माँगी ।

तब देवगुरु ने कहा - ''हे देव ! आप के लिए काल कर्म, काल धर्म प्रभाव कारक बनते हैं क्या ? ग्रह की गति का प्रभाव छूता है क्या ? अच्छी दवा आप चाह रहे हैं । मैं एक दवा बता रहा हूँ । इसे बनाकर रुई में लगा कर घाव पर रखिए । दर्द शमित होगा ।''

बृहस्पति यह कहकर वापस लौट गये ।

13. इमली का पेड और बिल (वल्मीक)

गाथाश्रवण क्रम में शौनक मुनि ने सूत मुनि से पूछा - ''हे सूत मुनि जी ! इमली का पेड और उससे संबन्धित विशेषताएँ जानने की इच्छा है । बताइएगा ।''

सूत जी कहने लगे -

''त्रेता युग में कौसल्या और दशरथ, दोनों अपने-अपने अन्त काल में भी श्रीराम पर मोह नहीं छोड सके । उसी धुन में उन्होंने प्राण छोडे । उस ऋणानुबन्ध से श्रीनिवास को आश्रय देने के लिए ब्रह्मा ने दशरथ के तेजस को तिंत्रिणी वृक्ष (इमली के पड) में निक्षेपित किया । कैसल्या का तेजस बिल (वल्मीक) के रूप में रूपायित हो गया ।

द्वापर के देवकी और वसुदेव ने भी श्रीकृष्ण पर पुत्र व्यामोह से जुडकर ही प्राण त्यागा था । उनका भी तेजस क्रमशः इमली के पेड और बिल में निक्षिप्त हो गया । यह भी ब्रह्मा का ही निर्देश था । इसी कारण से श्रीनिवास वहाँ दस हजार वर्ष रह सके हैं ।

इससे यह विदित होता है कि दशरथ ही तिंत्रिणी वृक्ष है, कौसल्या ही वल्मीक है, लक्ष्मण ही शेषाचल है, शेषाचल पर विराजित वन प्रान्त ही अयोध्या है, सरयू नदी ही स्वामी पुष्करिणी है और श्रीराम ही श्रीनिवस हैं ।

इसी प्रकार वसुदेव इमली का पेड बने, देवकी माता बिल बनी, बलराम शेषाद्रि बने, मथुरा नगरी ही वेङ्कटनगर (तिरुमल) है, यमुना नदी ही स्वामी पुष्करिणी है और श्रीकृष्ण ही लीला मानुष विग्रही श्रीनिवास हैं।''

यह सब सुनकर मुनिगण आश्चर्यचकित हुए । इसके बाद की गाथा को सूत महामुनि आगे सुनाने लगे ।

14. वराह स्वामी से मिलना

''बृहस्पति के द्वारा निर्देशित दवा के अन्वेषण में श्रीनिवास स्वामी, अगले दिन प्रातः काल के समय जंगल में इधर उधर घूमने लगे । उसी समय नर रूप में विचरण करनेवाले नारायण को श्रीवराह स्वामी ने देखा । उनके मन में शंका उभरी कि शायद वह एक राक्षस हो । इसी भ्रम में वराह जी घुरघुराये । तब श्रीनिवास एक झाडी में छिप गये । वराह स्वामी भी उनके पीछे ही झाडी में घुसे । श्रीनिवास एक झाडी के पार्श्व में दुबक कर खडे रहे ।

वराह स्वामी समझ गये कि ये एक साधारण नर नहीं, बल्कि नारायण ही हैं । उनके पास गये और पूछा - 'आप वैकुण्ठ छोड यहाँ क्यों आये हैं ? सिर पर घाव कैसे ? मानवाकृति क्यों ? उर पर लक्ष्मी जी क्यों नहीं है ?' श्रीनिवास ने बीता सारा वृत्तांत वराह जी को सुनाया । फिर उनसे कहा - 'मैं कलियुगांत तक पृथ्वी पर रहना चाहता

हूँ । मेरे लिए उपयुक्त निवास स्थान चाहिए ।' वराह जी ने बताया कि 'सही मूल्य चुकायेंगे तो मैं उपयुक्त स्थान बताऊँगा ।'

नारायण का प्रत्युत्तर था - 'मेरे पास अब लक्ष्मी नहीं है । वे कोलहापुर में हैं । मुझे पैसे कौन देगा ? यह पृथ्वी सारी आपके अधीन में ही है । उसमें से थोडी जगह आप दीजिए । आप जो स्थल देगें वहीं रहूँगा । नर रूपी होकर ही मैं नरों को यहाँ आकर्षित करूँगा । आप को प्रतिदिन पंचामृत अभिषेक कराने की व्यवस्था करूँगा । मुझसे पहले भक्त आपका ही दर्शन करेंगे । मनौतियाँ देंगे । अपको नैवेद्य चढ़ाने के बाद ही मैं खाना स्वीकार करूँगा ।'

इस बात पर वराह स्वामी सहमत हुए । शेषाद्रि पर वास के लिए श्रीहरि को जगह दी । साथ-साथ अपने यहाँ खाना बनाकर अर्पित करनेवाली वकुलमालिका को श्रीनिवास के पास भेजा । वे श्रीहरि को भोजन आदि की व्यवस्था में व्यस्त रहने लगीं ।

गो - वत्स रूपी ब्रह्मा और रुद्र, अपने कर्तव्य निर्वहण के बाद अपने अपने लोकों में चले गये ।

श्रीनिवास वेङ्कटाद्रि पर भक्तों की कामनाओं को पूरा करते वास करने लगे । उनसे राक्षस डरे । वकुलमालिका, वकुलमाता बनी । अपनी संतान मानकर वे श्रीहरि का पालन - पोषण करने लगीं । श्रीनिवास ने उन्हें मातावत ही देखा । श्रीनिवास के सिर का घाव शमित हुआ । वे लीला मानुष शरीरी बन वेङ्कटाद्रि पर भ्रमण करने लगे ।

15. वकुलमालिका

उक्त वृत्तांत को सुनकर शौनकादि मुनियों ने पूछा कि 'वकुलमालिका कौन है ? उसकी गाथा क्या है ?' तब सूत जी कहने लगे -

''द्वापर युग में यशोदामाता ने कृष्ण को लाड प्यार से पाला था । उनको युगीन शरीर त्यागने के पश्चात् विधाता ने पुनर्जन्म प्रदान किया । पुनर्जन्म में वे वकुलमालिका के रूप में वराह स्वामी के पास पहुँची । उनकी सेवा में समय बिताने लगी ।

उन्हें वराह स्वामी ने श्रीनिवास की सेवा के लिए नियुक्त किया । माता के समान वे श्रीनिवास के पास रहने लगीं । औषधी लाकर उनके घाव को पूरा । श्रीनिवास ने सौंदर्यराशि राजकन्या से विवाह किया ।''

सूत जी द्वारा उत्सुकता से गाथा श्रवण में लीन ऋषि - मुनियों ने श्रीनिवास की विवाह - गाथा जानने की इच्छा प्रकट की । सूत जी ने कथन को आगे बढाया, यथा -

16. आकाश राजा और तोंडमान

''अट्ठाईसवीं द्वापर युग के अन्त में आरंभ होनेवाले कलियुग में इस पृथ्वी पर शासन अनेक राजा करने लगे । उनमें चंद्रवंशी पांडव वंश में जन्में सुवीर नामक राजा भी एक थे । सुवीर का पुत्र सुधर्म थे । इस सुधर्म का श्रेष्ठ पुत्र ही आकाश राजा थे । धरणी देवी उनकी रानी थी ।

एक दिन राजा सुधर्म आखेट के लिए जंगल में गये । वहाँ एक सरोवर में एक नागकन्या जलक्रीडा कर रही थी । उसे देखकर सुधर्म आकर्षित हो गये । तब नागकन्या ने कहा - 'मैं नागकन्या हूँ । हम दोनों के बीच दांपत्य जीवन कैसे चलेगा ?' फिर भी राजा का उस नागकन्या पर मोह छूटा नहीं था ।

तब सुधर्म ने नागकन्या को अपने कुल और गोत्रों सहित परिचय दिया । साथ ही साथ वचन भी दिया कि उसके पुत्र को आधा राज्य

देगा । इस वचन पर नागकन्या ने सुधर्म को पति के रूप में स्वीकार किया । सुधर्म और नागकन्या का पुत्र ही तोंडमान हैं । इस तरह आकाश राजा और तोंडमान भाई हुए ।

17. पद्मावती का आविर्भाव

आकाश राजा को संतान लाभ नहीं था । उन्होंने बृहस्पति से इसका निदान पूछा । देव गुरु बृहस्पति ने सलाह दी - 'हे राजन । आप संतान प्राप्ति के लिए पुत्रकामेष्टि यज्ञ कीजिएगा ।'

राजा ने गुरु की सलाह स्वीकार की । सुर्वण हल से यज्ञ भूमि को जोतना था । हल चलाते समय एक सहस्रदल कमल जमीन से निकला । उसमें एक तेजोवती लडकी दिखाई पड़ी । सबने उस बच्ची की ओर आश्चर्यचकित होकर देखा । तब आकाशवाणी हुई - 'हे राजन! आप इस बच्ची का पालन - पोषण कीजिए । इससे आपकी भलाई ही होगी।'

राजा ने आनन्द से बच्ची को स्वीकारा । राणीवास में जाकर अपनी रानी धरणी देवी को बच्ची सौंपी । दम्पति ने बच्ची का पालन - पोषण लाड़ - प्यार से किया ।

यज्ञ भूमि में आकाश राजा को कन्या मिली थी । इसके शुभ परिणाम स्वरूप धरणी देवी गर्भवती भी हुईं । सर्वलक्ष्ण संपन्न पुत्र जन्मा । राजा को अमित आनंद हुआ । अनेक दान - धर्म किये । पुत्री का नाम पद्मावती और पुत्र का नाम वसुदास रखा । दोनों दिन-दिन प्रवृद्धमान हो क्षीर समुद्र समुत्पन्न लक्ष्मी - चंद्रमा के समान बढने लगें । कालक्रम में बडे हुए । सकल विधाप्रवीण भी हुए ।

पद्मावती युक्त वयस्का हुई । उपर्युक्त वर की चिंता राजा को लगी । अपने गुरु के पास चिंता व्यक्त की । गुरु ने विश्वास के साथ ढ़ाढ़स दिया कि पद्मावती के लिए अवश्य उपयुक्त वर मिलेगा ।

18. पद्मावती का वन - विहार

वह वसंत ऋतु का समय था । पास के उपवन नये - नये पुष्पों और कोंपलों से शोभायमान थे । एक दिन पद्मावती अपनी सहेलियों के साथ फूल बीनने उपवन में पहुँचीं । फूल चुनती - चुनती उपवन में विहरने लगीं । उपवन के कमल सरोवर में जलक्रीडार्थ गयीं । सरोवर में स्नान के बाद श्रृंगारवन में पुष्प - शय्या पर बैठीं ।

उस समय नारद मुनि वहाँ पहुँचे । पद्मावती ने शय्या से उठकर नारद का सादर आह्वान किया । सभलि प्रणमित हुईं । नारद ने उनकी हस्त रेखाएँ देखीं । भविष्य वाणी के रूप में बताया कि श्रीमन्नारायण ही उनको पति के रूप में मिलेंगे । फिर नारद वहाँ से चले गये ।

19. श्रीनिवास का आखेट - पद्मावती का दर्शन

जिस दिन पद्मावती उपवन - विहार के लिए निकली थी उसी दिन श्रीनिवास भी वेङ्कटाचल से आखेट के लिए घोडे पर सवार होकर निकले । जंगलों में, पर्वत सीमाओं में बेटोक संचार किया । तभी एक मस्त हाथी ने उनको रोका । श्रीहरि उसे मारने उसके पीछे दौड पडे । वह पहाड पर से नीचे की ओर दौडा । दौड दौड़कर मस्त हाथी ने अर्द्ध योजन की दूरी नापी । अंततः वह उस उपवन के पास पहुँचा जहाँ पद्मावती पुष्प चयन के लिए आयी थीं ।

हाथी की घींकार ध्वनि सुनकर पद्मावती की सखियाँ भयभीत हुई । पद्मावती की रक्षा के प्रयत्नों में लगीं । उसी समय श्रीनिवास घोडे पर सवार हो वहाँ पहुँचे । घोडे पर आये श्रीनिवास को देखकर भी पद्मावती की सहेलियाँ सहम गयीं ।

उधर हाथी ने दौडने में अपने को अशक्त पाकर सूँड उठाकर हरि को नमस्कार किया । श्रीनिवास दयालू है न ! बस उसे चले जाने का संकेत किया । हाथी वहाँ से निकल गया ।

पद्मावती और उनकी सखियों को देखकर श्रीनिवास झाडियों के पीछे छिप गये । हाथी, घोडा और पुरुष को न पाकर पद्मावती की सखियाँ आपस में तर्क - वितर्क करने लगीं ।

पद्मावती ने उनकी बातचीत सुनी । मुस्कुराई । उनके साथ शतरंज खेलने में व्यस्त हो गयीं । श्रीनिवास झाडियों के पीछे से पद्मावती को देखने लगे । उनके सौंदर्य ने श्रीनिवास को आकर्षित किया । उनका मन लुट गया । धीरे - धीरे वे पद्मावती देवी के पास पहुँचे । उनकी ओर साभिप्राय दृष्टियों से देखने लगे ।

श्रीनिवास का व्यवहार देखकर पद्मावती ने अपनी सखियों से कहा - 'जरा उसे समझाइए कि राजकुमारियाँ जहाँ रहती है वहाँ पर परपुरुषों का आना मना है । उसे दूर जाने के लिए कहिए ।'' सखियों ने ऐसा ही किया ।

सखियों की बात सुनकर श्रीनिवास ने उनसे कहा - ''मैं खुद आप की राजकुमारी से बात करने आया हूँ । आप ही यहाँ से निकल जाइए ।'' तब राजकुमारी पद्मावती देवी ने उनका विवरण प्राप्त करने

का आदेश दिया । सखियों ने श्रीनिवास के कुल, गोत्र, माता - पिता आदि से संबन्धित विवरण देने के लिए कहा ।

उस पर श्रीनिवास ने कहा - ''हमारा वंश चंद्रवंश है, वशिष्ठ गोत्र है, देवकी - वसुदेव हमारे माता - पिता हैं । बलराम हमारे भाई हैं और सुभद्रा हमारी बहिन । जाकर राजकुमारी से यह सब बताइएगा ।''

इस पर पद्मावती की सखियों ने कहा - '' ये चंद्रवंशी राजा आकाश राजा की पुत्री हैं । उनका गोत्र अत्रि गोत्र है ।''

सुनकर श्रीनिवास ने कहा - ''मैं इन्हें चाहता हूँ । बात इन्हें बता कर समझाइए ।'' यह तो एक प्रकार से श्रीनिवास की प्रार्थना थी ।

इस पर पद्मावती क्रुद्ध हुई और कहा - ''हे आखेटक ! दूर भाग !'' श्रीनिवास वहाँ से हिले नहीं । टले नहीं । इस पर पद्मावती ने अपनी सखियों से पत्थरों की वर्षा करवायीं । पत्थरों से आहत होकर घोड़ा मरा । श्रीनिवास भी चोट खाकर उत्तराभिमुख हो पहाड की ओर चल पडे । वेङ्कटाचल पहुँचकर वल्मीक में घुसे ।

20. पद्मावती का परिताप

पद्मावती अपनी सहेलियों के साथ अंतःपुर पहुँची । पुष्प शय्या पर लेट गयीं । मन में चिंता उभरी । सोच में पड गईं ।

इधर श्रीनिावस, पद्मावती के विरह में तपने लगे । वकुला माता पास आयीं । उनसे बात करने के प्रयत्न किये । श्रीनिवास मौन ही धारण किया । उनके शरीर पर पत्थरों के घाव थे । देखकर वकुला माता भयभीत हो गयी । श्रीनिवास की सुश्रूषा की । घटना बताने की आरजू की ।

अंततोगत्वा श्रीनिवास पिघले । सब कुछ माता के सामने रखा । पद्मावती के कुल-गोत्र, और माता-पिता के संबन्ध में विवरण दिया । उस कन्या पर अपने मन की बात कही । किसी न किसी तरह पद्मावती का अपने साथ विवाह कराने के प्रयत्न आरंभ करने के लिए कहा । प्रार्थना की ।

21. वेदवती का वृत्तांत

तब वकुलमालिका ने श्रीनिवास से पूछा - ''बेटा ! इतनी सौंदर्यराशि का एक कमल में जन्म लेने का वृत्तांत क्या है ?''

वकुला माता की जिज्ञासा समझ कर श्रीनिवास ने कहा - ''हे माँ! मैं ने त्रेता युग में दशरथ महाराज के पुत्र के रूप में अवतार लिया था । जानकी से मेरा विवाह संपन्न हुआ । पिता की आज्ञा से मैं ने वनवास किया । रावण नामक राक्षस ने सीता का हरण किया । सीता ने 'राम, राम' पुकारा । सीता के विलाप को अग्नि देव ने सुना । रावण के पास जाकर कहा - 'हे रावण ! ये सीता जी नहीं हैं । सीता जी को मेरे यहाँ रखकर उनके स्थान पर एक पवित्र वनिता को राम के पास रखा है । मैं तुम्हारा मित्र हूँ । मित्रता निभाने की भावना से मैं यह रहस्य तुम्हारे सामने खोल रहा हूँ ।' यह कहकर अग्नि देव ने सीता के रूप में उनके पास रहनेवाली वेदवती को दिखाया ।

रावण मूर्ख था । अग्नि की बात सही मानी । असली सीता को छोडकर सीता के छद्मवेष में रहनेवाली वेदवती को स्वीकार कर लंका ले गया । अशोक वाटिका में उसी वेदवती को सीता समझकर रावण ने रखा । असली सीता को अग्नि देव अपने में छिपाकर ले गये । अशोक वाटिका में रहनेवाली सीता सीता नहीं । वेदवती ही थीं ।

मैं ने समुद्र पार किया । लंका पहुँचकर रावणादि राक्षसों का संहार किया । तब मैं ने सीता रूपी वेदवती से कहा कि 'आप पहले अग्नि प्रवेश कीजिए । अग्नि प्रवेश के बाद ही मैं आप को स्वीकार करूँगा।' तब वेदवती ने अग्नि प्रवेश किया और अग्निदेव ने अपने में पवित्र रूप में छिपायी सीता को मुझे अर्पित किया ।

सीता को तो मैं ने स्वीकारा, पर सीता की इच्छा थी कि मैं वेदवती को भी स्वीकार करुँ । तब मैं ने अपने त्रेता युग में एक पत्नी व्रतधर्मी होने की बात कही । सीता के अनुरोध पर मैं ने अगले जन्म में (अवतार में) वेदवती को स्वीकारने का विश्वास दिलाया । तब तक वेदवती ब्रह्मलोक में रहेगी । वेङ्कटाद्रि पर मेरे अवतरण के समय वेदवती भी पृथ्वी पर अवतरित होगी । तभी मैं उनको स्वीकार करूँगा । वे ही पद्मावती हैं ।

यह एक परम रहस्य है । केवल मैं और अग्निदेव ही जानते हैं । इसके बाद मैं ने द्वापर में वसुदेव के पुत्र के रूप में जन्म लिया । तत्पाश्चात् इस अवतार में मैं ने वल्मीक (बिल) में प्रवेश किया।''

वकुला माता ने वेदवती का वृत्तांत जानकर पद्मावती के बारे में पूर्ण जानकारी पायी । किन्तु वकुला माता ने पूर्ण रूप से वेदवती की गाथा समझनी चाही । श्रीनिवास ने वेदवती का एक और वृत्तांत माता को सुनाया।

'वेदवती पहले एक विप्र कन्या थी । मुझे पति के रूप में पाने के मनोरथ को लेकर कठोर तपस्या की । तपस्यालीन उसे, रावण ने कामेच्छा से बलात्कार करना चाहा । वेदवती ने उस समय रावण से कहा था कि तुम्हें श्रीहरि से मरवाऊँगी । इतना कहकर तुरंत अग्नि देव का

स्मरण कर प्रखर ज्वालाओं में प्रवेश कर गयी । अनल ने उसकी रक्षा की । अपने पास ही सुरक्षित रखा ।

सीतापहरण के समय वेदवती को सीता के रूप में रावण को अग्नि ने दिया । सीता देवी को अपनी धर्म पत्नी स्वाहा देवी के पास रखा । वेदवती की प्रतिज्ञा के अनुरूप मुझसे रामावतार में वेदवती ने रावण का संहार करवाया । अग्नि द्वारा रक्षित सीता अग्नि परीक्षा के द्वारा मेरे पास पहुँचायी गयीं । इस तरह रामावतार में वेदवती का बहुत बडा ही हाथ रहा है । रावण वध के बाद वह ब्रह्मलोक पहुँच गयी । वहाँ जाकर भी उसने मेरी तपस्या ही की । फिर पद्म में प्रवेश कर पद्मावती के रूप में अवतरित हो गयीं ।''

श्रीनिवास ने पद्मावती का वृत्तांत वकुला माता को सुनाया । तब जाकर माता से जोर से प्रार्थना की कि वे जाकर उन दोनों का विवाह संपन्न करायें ।

माता ने पूछा कि 'पद्मावती का वास नगर कौन - सा है ?''

श्रीनिवास ने कहा - ''इसी वेङ्कटाद्रि के पास की नारायणपुरी है । आकाश राजा इसको राजधानी बनाकर पृथ्वी पर धर्मबद्ध शासन कर रहे हैं । तोंडमान उनका भाई है । पुत्र वसुदास, धरणीदेवी धर्मपत्नी है और पुत्री पद्मावती है ।'' आकाश राजा के वैभव तथा नारायणपुरी की प्रशस्ति भी उस वक्त श्रीनिवास ने गायी । नारायणपुर जाने का रास्ता भी बताया । उपयुक्त प्रयत्न कर दोनों को विवाह सूत्र में बांधने की प्रार्थना भी की ।

वकुला माता ने श्रीनिवास से पूछा कि अगर आप के बारे में पूछेंगे तो मैं क्या कहूँ ।

''माता ! चंद्रवंशी देवकी और वसुदेव मेरे माता पिता हैं । बलराम मेरे बडे भाई और सुभद्रा मेरी बहिन हैं । कहो कि मेरा वशिष्ठ गोत्र है। मेरा जन्म नक्षत्र श्रवणा नक्षत्र है । और पूछेंगे तो कहना कि मैं पद्मावती के लिए सभी तरह से उपयुक्त वर हूँ ।'' - माता के लिए श्रीहरि का उत्तर था ।

22. वकुला माता का नारायणपुर जाना

वकुला माता देवमाया निर्मित अश्व को अधिरोहित कर वेङ्कटाद्रि से उतर नीचे पहुँची । वहाँ कपिलतीर्थ में पवित्र स्नान किया । कपिलेश्वर के सामने प्रणमित हुई । शुक योगी और अगस्त्य मुनि को नमस्कार किया । नारायणपुर पहुँची । वहाँ अगस्त्य महामुनि द्वारा निर्मित शिव मंदिर में गयी । पूजाएँ कीं ।

तत्पश्चात वहाँ पूजार्थ आयी कन्याओं में से एक को बुलाकर माता ने पूछा - ''तुम कौन हो ?'' कन्या ने कहा - ''मैं आकाश राजा की पुत्री पद्मावती की सखी हूँ ।''

''लगता है कि तुम किसी प्रकार की चिंता में डूबी हो । तुम्हारा मुँह क्यों कला विहीन है ?''

कन्या का उत्तर था - ''माता ! मैं आप से क्या कहूँ ? कैसे कहूँ? मेरी सखी पद्मावती हम सबके साथ वन-विहार के लिए गयीं । वहाँ तक एक शबर कुमार आया था । वह बहुत सुंदर था । वह घोडे पर सवार हो आया था । उसने राजकुमारी से कुछ कहकर जाना चाहा । कुछ कहा भी । हमारी राजकुमारी उस पर क्रोधित हो गयी । हम से पत्थर फेंकवायीं । पत्थरों से घोडा आहत हो मर ही गया । वह युवक उत्तर दिशाभिमुख हो भाग ही गया ।

पद्मावती देवी अपने महल में पहुँची । लगता है कि उस किरात की ओर आकर्षित हो गयी हैं ! राजकुमारी को ताप ज्वर हुआ है । उनके माता-पिता, चिंताक्रान्त हैं । देवगुरु बृहस्पति द्वारा चिकित्सा हो रही है । लगता है कि उनका ताप शमित होनेवाला ही नहीं है ।

गुरु बृहस्पति ने राज दंपति को आश्वासन तो दिया है कि 'हे राजन ! राजकुमारी के प्राणों की कोई चिंता नहीं है । अभी आप रुद्राभिषेक कराइए । सब कुछ ठीक ही होगा ।

राजा की ओर से रुद्राभिषेक के लिए आवश्यक तैय्यारियाँ करायी गयी हैं । उपयुक्त विप्रवर मंदिर में पधारे हैं । हम फल - पुष्पादिकों को लेकर यहाँ आयी हैं ।'

इतना कहकर पद्मावती की सखी ने वकुला माता से पूछा - 'आप कौन हैं ? यहाँ किस कार्यार्थ पहुँची हैं ?'

वकुला माता ने उत्तर में कहा - ''हे लतांगी ! मैं श्रीवेङ्कटेश्वर की दासी दूँ । एक विशेष कार्य का भार लेकर सुबह ही यहाँ पहुँची हूँ । नगर में पहुँचकर रानी धरणी देवी को आप्त वाक्य सुनाने हैं ।''

पद्मावती की सखी ने कहा - ''माता ! आप रुद्राभिषेक संपन्न होने तक यहीं रहिए । तत्पश्चात् मैं आपको महारानी के पास ले जाऊँगी।''

वेङ्कटाद्रि पर श्रीनिवास धीर होकर भी पद्मावती के विरह में चिंता ग्रस्त रहे ।

* * *

तृतीय प्रकरण

23. पुरंद स्त्री के वेष में श्रीनिवास

वकुलमालिका के वेङ्कटाचल से निकल जाने के बाद श्रीनिवास के मन में इच्छा जगी कि वे भी जाकर पद्मावती को देखें । किसी भी तरह उनके पास श्रीनिवास को पहुँचना है । अपने दिव्य रूप को उन्होंने छुपाया । जीर्ण वस्त्र पहन कर पुरंद स्त्री का रूप धारण किया । पुरंद स्त्रियाँ वन्य जाति की स्त्रियाँ होती हैं । वे हाथ में एक टोकरी और विशेष प्रकार की बेंत लेकर निकलती हैं । गाँवों में जाकर भविष्यवाणी बताती हैं । उनकी भविष्यवाणी बहुत सीमा तक सही निकलती हैं । श्रीनिवास ने पुरंद स्त्री का वेष धारण किया । ब्रह्मा उनका बच्चा बना । टोकरी को सिर पर धरकर बच्चे को बगल में ले श्रीनिवास नारायणपुर में पहुँचे । नगर की वीथियों में भविष्यवाणी बताने के बारे में जोर से बोलते घूमने लगे ।

कुछ लोगों ने पुरंद स्त्री से अपनी भविष्यवाणी सुनी । इतने में वह रानी की नजर में पडी । वे भी उसके पास पहुँचीं । भविष्य कथन जानने की इच्छा प्रकट की । पर पुरंद स्त्री वेष धारी श्रीनिवास ने उनसे कहा - ''मेरी वाणी सबको शुभ पहुँचानेवाली है । जो सत्य जानना चाहते हैं उन्हीं को मैं सुनाऊँगी । हर किसी के बारे में मैं भविष्यवाणी नहीं कहूँगी ।''

राजमहल की परिचारिकाएँ रनिवास में जाकर रानी को समाचार दिया । रानी ने पुरंद स्त्री को साथ ले आने के लिए उनसे कहा । धारणी देवी की इच्छा बताकर परिचारिकाओं ने पुरंद स्त्री को महल में पहुँचाया ।

रानी धरणी देवी ने पुरंद स्त्री का सम्मान किया । मर्यादाएँ पहुँचवायी । उससे पूछा - ''तुम्हारा गाँव क्या है ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा घर कहाँ है ? तुम यहाँ कहाँ रहती हो ?''

''महारानी जी ! हम जैसों का कोई गाँव नहीं होता । घर - द्वार नहीं रहता । हम घूमते लोग हैं । हमारा किसी एक गाँव से संबन्ध नहीं रहता । गाँव - गाँव घूमती हैं । लोगों की भविष्यवाणी कहती फिरती हैं । इसी तरह मैं यहाँ भी आयी हूँ ।''- रानी के प्रति पुरंद स्त्री के ये वचन थे ।

24. पुरंद स्त्री की भविष्यवाणी

पुरंद स्त्री की इच्छा के अनुसार रानी ने उसे अच्छी सामग्री दी । एक सेर भर मोती दिये । भविष्य सुनाने की प्रार्थना की । समस्त देवताओं का स्मरण कर पुरंद स्त्री ने इस प्रकार भविष्यवाणी सुनाई -

''हे माता ! आपकी सोच अच्छी है । आप अपनी बेटी के बारे में पूछ रही हैं । आपकी लाडली ने फुलवारी में एक सुंदर श्यामल युवा को देखा है । उस पर मोहित हुई है । वह सामने दिखनेवाले सुनहले पहाड पर रहता है । वह सामान्य नहीं है । वह श्रीमन्नारायण ही है । उसके मन में भी आपकी लाडली है । आपकी बच्ची भी उसे चाहती है । उससे विवाह करायेंगी तो बच्ची सुखी रहेगी । कुछ ही समय बाद उससे भेजी गयी । एक माँ यहाँ पहुँचेगी । बात पक्की होगी । मेरी बात झूठ नहीं होगी । मेरी वाणी सत्य है ।''

इतना कहकर पुरंद स्त्री खडी हो गयी । वहाँ से निकल पडी । पुरंद स्त्री श्रीनिवास बन गया । श्रीनिवास वेङ्कटाद्रि पहुँच ही गये ।

पुरंद स्त्री की बातों से रानी को आश्चर्य हुआ । पद्मावती के पास वे पहुँची । उनसे पूछा - ''बेटी ! क्यों ऐसी हो गयी हो ? तेरी चिंता का कारण क्या है ? क्या यह सच है कि तू ने किसी एक श्यामल सुंदराकार युवक को देखा है ? उसकी ओर आकृष्ट है क्या ? सच बोल । इससे हम पर लोक निंदा होगी न ?''

पद्मावती ने अपनी माता को सांत्वना देती हुई जवाब दिया - ''माँ! आपको अपयश की चिंता होनी नहीं चाहिए । मेरे चहैती सामान्य नहीं हैं । वे पुरुषोत्तम हैं, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं । मेरा मन उस परमेश्वर की ओर गया है । अब आगे जो होना है वही होकर रहेगा । आपको चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है ।''

इतने में रुद्राभिषेक संपन्न करके विप्र पद्मावती की सखियों और वकुला माता के साथ-साथ रानी के पास पहुँचे । तीर्थ तथा प्रसाद रानी को दिये । अभिषेक तीर्थ पद्मावती पर प्रोक्षण भी किया ।

25. धरणी देवी से वकुलमालिका की बातचीत

धरणी देवी ने वकुलमालिका का समुचित सत्कार किया । सादर पूछा - ''आप कहाँ से आ रही हैं ? आप का संबन्ध किनसे है ? किस कारणवश हम से मिलना चाह रही हैं ?''

''महारानी जी ! मैं शेषाद्रि से आ रही हूँ । मैं श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी की दासी हूँ । उनकी आज्ञा से विवाह संबन्धी बातें करने आयी हूँ । आपकी पुत्री सकल सद्गुणराशि है । उनका श्रीवेङ्कटेश्वर के साथ विवाह सूत्र में बंधना लोक कल्याण कारक ही होगा ।'' - वकुलमालिका का यह प्रस्ताव था ।

इस पर धरणी देवी ने प्रश्न किया - ''माता ! माधव के पास रमा है न ! क्यों हमारी लडकी को चाह रहे हैं ?''

''महारानी जी ! आजकल लक्ष्मी देवी श्रीहरि के पास नहीं हैं । वे कोलहापुर पहुँचकर भक्तों को तार रही हैं । माधव ने आपकी कन्या का वरण किया है । वे विवाहार्थि हैं । इस प्रस्वाव को आप स्वीकार कीजिएगा ।'' - वकुलमालिका के मृदु वचन थे । लक्ष्मी देवी के कोलहापुर पहुँचने का वृत्तांत सुनाया । साथ-साथ वेदवती का वृत्त भी सुनाया । धरणी देवी ने सारी बातें आकाश राजा के सामने रखीं । वे भी संतुष्ट हुए । वकुलमालिका के प्रति आदर दिखाया । पद्माक्ष और पद्मावती का विवाह राजा को स्वीकार्य था । समाचार पद्मावती को दिया गया । उनको अमित आनन्द हुआ ।

तत्पश्चात् आकाश राजा ने बृहस्पति का स्मरण किया । देवगुरु प्रत्यक्ष हुए । गुरु की सूचना के अनुसार नारायणपुर से उत्तर की दिशा में पाँच कोस की दूरी पर स्थित शुक आश्रम से शुक योगी को बुलाया गया । बृहस्पति ने शुक योगी को सब कुछ समझाया । शुक ने भी पद्मावती - श्रीनिवास के कल्याण (मंगलविवाह) पर संतोष प्रकट किया।

26. पद्मावती - श्रीनिवास की विवाह - पत्रिका

इस पर बृहस्पति और शुक दोनों ने पद्मावती और श्रीनिवास की जन्म कुण्डली देखी । विवाह के लिए योग्य शुभ लग्न का निर्णय किया । विवाह - पत्रिका तैयार की गयी । गुरु की सूचना के अनुसार विवाह - पत्रिका लेकर शुक योगी वेङ्कटाद्रि गये । पत्रिका श्रीनिवास को दी गयी । श्रीनिवास भी आनंदित हुए ।

विवाह का सुमुहूर्त वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में दशमी शुक्रवार की रात को निर्धारित हुआ । शुभ मुहूर्त पर बन्धु - मित्र सहित पहुँचने का समाचार आकाश राजा को श्रीनिवास ने भेजा । शुक जी नारायणपुर पहुँचे । श्रीनिवास का लेख राजा को दिया गया । राजा से सत्कार पाकर शुक जी अपने आश्रम लौटे । बृहस्पति भी अमरावती लौटे । धरणी देवी ने वकुला माता को दिव्यांबर, आभूषण देकर सत्कार किया । वकुला माता ने वेङ्कटाद्रि पहुँच कर श्रीनिवास को पूरा समाचार दिया।

श्रीनिवास ने तब वकुला माता से कहा - ''माँ, आपने मेरे विवाह के संदर्भ में अपना कर्तव्य भली - भाँति निभाया । आप इसमें विजयी हुई हैं । आगे विवाह का कार्य है । इसमें खर्च के लिए बहुत धन चाहिए। वह कहाँ से मिलेगा ?''

''लक्ष्मी देवी को यहाँ बुलाइए । मन चाहा धन मिलेगा ।'' - वकुला माता की सलाह श्रीनिवास को भाया नहीं था । उत्तर में उन्होंने कहा - ''माता, मैं यहाँ दूसरे विवाह के लिए तैयारी में हूँ, क्या रमा मुझे धन देगी ? क्या उनसे धन माँगना समुचित समझा जायेगा ?'' इसमें श्रीनिवास की चिंता छिपी थी ।

इस पर वकुला माता की एक और सलाह थी; वराह स्वामी से धन माँगने को लेकर । श्रीनिवास इसके लिए सहमत हुए । श्रीनिवास की अनुमति पाकर वकुलादेवी वराह स्वामी के पास गयी । समाचार देकर धन की सहायता माँगी । वराह जी ने वकुलमालिका से कहा - ''श्रीनिवास के लिए इस संदर्भ में कोई कमी नहीं होगी । तुम्हें इसके बारे में चिंता नहीं करनी है । ब्रह्मादि देवतागण उतर कर आयेंगे । वे ही विवाह संपन्न करायेंगे ।''

वकुला माता श्रीनिवास के पास लौट आयी । वराह स्वामी का अभिमत सुनाया । इस पर श्रीनिवास ने शेष और गरुड का स्मरण किया । वे तुरंत स्वामी के सामने प्रस्तुत हुए । श्रीनिवास ने विवाह संबन्धी एक लेख लिखकर गरुड के द्वारा ब्रह्मा को भेजा । एक और पत्र शेष द्वारा शिवजी को भेज दिया ।

27. ब्रह्मा - रुद्रादि का आगमन

श्रीनिवास का पत्र पाकर विधाता ने विवाह कार्य के लिए आने योग्य सभी को शुभ समाचार दिया तथा आमंत्रित किया । सरस्वती समेत स्वयं हंस वाहनारूढ़ हो ब्रह्मा वेङ्कटाचल पहुँचे । श्रीनिवास ने आदर सहित ब्रह्मा को सारी बातों का विवरण दिया ।

आदिशेष द्वारा शुभ पत्र पाकर शिवजी वृषभ वाहनारूढ़ हो पार्वती समेत वेङ्कटाचल पधारे । साथ में प्रमथगण भी था । श्रीनिवास ने शिवजी का आदर - सत्कार किया । सारी बातें उनके सामने रखीं । इतने में इन्द्रादि देवता समूह भी सपरिवार वेङ्कटाद्रि पहुँच गया । श्रीहरि ने सबको आदर सहित उचित आसन देकर शुभ समाचार सविस्तार समझाया । सब ने अपना हर्ष प्रकट किया ।

इंद्र की प्रेरणा से विश्वकर्मा नारायणपुर गये । वहाँ मणि - माणिक्यों से शोभित एक स्वर्ण मंदिर का निर्माण किया । वकुला माता विवाह का प्रबंध करने में डूब ही गयी ।

ब्रह्मा ने अभ्यंगन स्नान के लिए श्रीनिवास को बुलाया । लेकिन श्रीनिवास ने चिंताक्रांत होकर ब्रह्मा से कहा - ''हे पुत्र ! लक्ष्मी कोलहापुर में हैं । उनकी अनुपस्थिति में मैं अभ्यंगन स्नान के लिए कैसे तैयार हो

सकता हूँ ? उनकी सहमति लिये बिना मैं यह विवाह कैसे कर ले सकूँगा ?''

तब एक समुचित निर्णय लिया गया । श्रीलक्ष्मी को ले आने के लिए सूर्य देव को भेजा गया ।

28. श्रीलक्ष्मी देवी का आना

सूर्य देव तुरंत कोलहापुर पहुँचे । श्रीलक्ष्मी देवी से निवेदन किया - ''माता जी ! पद्मनाभ अशक्त हैं । दीन स्थिति में हैं । शेषाचल वासी महितात्मा आपको देखना चाहते हैं ।''

समाचार और निवेदन पाकर श्रीलक्ष्मी तुरंत रथारूढा हो आकाशमार्ग से शेषाचल पहुँची । वहाँ सभी देवता समूह ने उनकी वंदना की । श्रीनिवास ने उन्हें समुचित आदर के साथ स्वागत किया । कुछ बातें उन्हें अकेले में समझायीं । वैकुण्ठ छोडने के बाद की सारी घटनाएँ उनको बतायीं । पद्मावती से पाणिग्रहण की अनुमति उनसे माँगी ।

समस्त विषय को समग्र रूप में समझने वाली लक्ष्मी देवी ने श्रीनिवास को अपनी समहति दी । तत्पश्चात् वर के शुभ अभ्यंगन स्नान और मंगल कार्य संपन्न हुए । लक्ष्मी देवी ने भी अभ्यंगन विधि से स्नान किया ।

यजुर्शास्त्रानुसार वैखानस सूत्रोक्त विधान में पुण्याहवाचनादि समस्त मंगल कार्यों का निर्वाह किया गया । श्रीनिवास ने अपनी कुलदेवता शमीवृक्ष की प्रदक्षिणा - नमस्कार सहित पूजा की ।

तदुपरान्त श्रीनिवास ने भू वराह स्वामी को भूदेवी समेत विवाह के लिए आमंत्रण दिया । वराह स्वामी ने अपनी ओर से वकुलमालिका को ही मान लेने की बात कही ।

29. ऋण - पत्र (कर्ज पत्र)

विवाह के लिए आवश्यक धन राशि को लक्ष्मी देवी से माँगने के पक्ष में श्रीहरि नहीं थे । श्रीनिवास ने इसे उचित भी नहीं माना । इसलिए कुबेर से धन की प्रार्थना की और कहा - ''मैं एक ऋण - पत्र लिखकर दूँगा । हर वर्ष मैं क्रम से सूद भी दूँगा । कलियुगांत तक मैं ऋण पूरा चुकाऊँगा । इसके साक्षी रहेगें ब्रह्मा और शिवजी ।''

कुबेर ने कहा - ''मुझे सूद नहीं चाहिए । आपके लिए जितना धन चाहिए उतना मैं दूँगा ।''

इस पर श्रीनिवास ने कहा - ''बिना सूद का कर्ज मैं नहीं लूँगा । सूद अवश्य दूँगा ।'' इतना कहकर श्रीनिवास ने ब्रह्मा और शिवजी की ओर मुडकर कहा - ''मैं कलियुगांत तक गिरि पर वास कर भक्तकोटि को अनुग्रह प्रदान करूँगा । उनसे प्राप्त मनौतियों को और धन को स्वीकार कर कुबेर का ऋण चुकाऊँगा । आप दोनों और यहाँ का पीपल वृक्ष इसके साक्षी हैं ।'' तदनुसार ऋण पत्र लिखकर कुबेर को दिया गया । कुबेर ने चौदह रामटेंका मुद्रा को कर्ज के रूप में दिया।

तत्पश्चात् विवाह में आह्वानित सभी के लिए भोजन की व्यवस्था की गयी । शाम का समय था । सूर्य देव ने प्रकाश प्रदान करने का दायित्व चन्द्रदेव को दे दिया । रात बीती । पुनः प्रातः के समय, गिरि पर सूर्य देव ने पैर धरा । विवाह उत्सव के लिए पधारे सभी ने पुष्करिणी में स्नान किया । संध्या वन्दन को संपन्न किया ।

तत्पश्चात् मंगल नादों के बीच आहूत सभी ने अपने-अपने वाहनों पर अधिष्ठित होकर शेषाद्रि से उतर कपिल तीर्थ मार्ग से यात्रा आरंभ

की । शुकाश्रम से होती हुई यात्रा आगे बढ़ी । सायं समय तक सब नारायणपुर पहुँचे।

वहाँ आकाश राजा ने समुचित सत्कार सहित सबका स्वागत किया । विवाह विधि के अनुरूप संबन्धित नवग्रह पूजा, यज्ञादि विधियों की व्यवस्याएँ की । शास्त्रोक्त पद्धति में सब कार्य संपन्न हुए । आहूत सब अतिथियों ने निर्धारित अतिथि गृहों में रात को विश्राम किया ।

अगले दिन अरुणोदय के साथ सब ने स्नानादिक कार्य संपन्न किये । कुछ को उपवास रखना था । उसका अनुपालन भी किया गया । शाम को आकाश राजा धरणीदेवी समेत वर पक्षवालों के अतिथि मंदिर में आये । वहाँ सांप्रदायिक विधि से सबका सम्मान किया ।

30. पद्मावती - श्रीनिवास का विवाह - वैभव

तब श्रीनिवास ने लक्ष्मी समेत ऐरावत पर चढ़कर मंगल वाद्य - घोष के बीच नगर प्रवेश किया । ब्रह्मादि देवता समूह उनके साथ था । राजा ने मंदिर द्वार पर मंगल नाद के बीच स्वागत किया । तोंडमान की पत्नी ने सुमंगलियों के साथ श्रीहरि और श्रीलक्ष्मी को मंगल आरती दी ।

आरतियाँ अर्पित करनेवाली सुवासिनी स्त्रियों को कुबेर के द्वारा रेशमी साडियाँ प्रदान करवायी श्रीहरि ने । इसके बाद अंतःपुर में प्रवेश कर सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान हुए ।

अनसूयादि सुवासिनी महिलाओं ने वधू पद्मावती का यथोचित रीति से अलंकरण किया । पद्मावती देवी ने गौरी पूजा की । धरणी देवी सुमंगली स्त्रियों सहित वधू को लेकर विवाह मंडप में पहुँचीं ।

वशिष्ठ महर्षि ने विवाह प्रक्रियाओं का निर्वाह किया । कनकरत्ना भूषण समन्विता कन्या का दान आकाश राजा ने किया । मंगलसूत्र

धारण, मंगल वाद्य नाद के बीच किया गया । होम, सप्तपदी आदि के पश्चात् अंरुधती दर्शन के साथ समस्त वैवाहिक विधियाँ शास्त्र सम्मत रूप में समुन्नत रीति से संपन्न की गयीं । आहूतों को फल - दक्षिणादि से सम्मानित किया गया ।

अत्यंत वैभव के साथ नारायणपुर में पद्मावती - श्रीनिवास का विवाह संपन्न हुआ । उसे देखकर सभी धन्य हुए ।

दूसरे ही दिन अरुणोदय के समय श्रीहरि ने आकाश राजा से पद्मावती को साथ भेजने का प्रस्ताव रखा । राजा ने कहा - ''कम से कम आपको एक महीने तक यहीं रहना उचित होगा ।'' इस पर श्रीहरि ने उत्तर दिया - ''वहाँ अनेक कार्य हैं । आपके यहाँ इतने दिन रहना संभव नहीं होगा ।'' श्रीलक्ष्मी ने भी पद्मावती को श्रीनिवास के साथ भेजने के लिए कहा । ''वहाँ वकुलमालिका हैं । वे माता के समान पद्मावती की देखरेख करेंगी । इसकी चिंता आपको करने की आवश्यकता नहीं है ।'' - यह लक्ष्मी देवी की सांत्वना भरी बात थी ।

राजा ने पुत्री और दामाद को भव्य आभरण दिये । अश्रुसिक्त नेत्रों से पुत्री को दामाद के हाथों में सौंप दिया । श्रीनिवास ने तब कहा - ''मामा जी ! अपनी पुत्री के संबन्ध में आपको चिंता करने की आवश्यकता ही नहीं है ।'' गरुड़ पर आरूढ़ होकर पद्मावती समेत श्रीनिवास, वेङ्कटाद्रि की ओर चले ।

ब्रह्मादि देवताओं के साथ श्रीनिवास पहले अगस्त्याश्रम में पहुँचे । एक दिन वहाँ बिताया । दूसरे दिन - शिव आदि ने श्रीनिवास की अनुमति लेकर अपने अपने वास स्थान की ओर प्रस्थान किया । लक्ष्मी देवी श्रीहरि को समझा - बुझाकर कोलहापुर चली गयी ।

31. अगस्त्याश्रम वास

आश्रम में श्रीनिवास ने अगस्त्य से कहा - ''हे मुनीन्द्र ! आज्ञा दीजिए ! अब हम वेङ्कटाचल चलेंगे ।''

अगस्त्य मुनि ने श्रीनिवास को बताया - ''श्रीनिवास ! आप सब जानते हैं । विवाह के बाद छः महीनों तक पर्वत पर चढना वर के लिए निषिद्ध है न ! तब तक आप यहीं रहिऐगा ।''

प्रस्ताव से सहमत होकर श्रीनिवास ने सतीसमेत मास पर्यन्त वहीं रहने का निर्णय लिया ।

पद्मावती - श्रीनिवास के विवाह के पश्चात् कुछ ही समय बाद आकाश राजा का स्वर्गवास हुआ । वसुदास ने पिता की श्राद्ध क्रियाएँ संपन्न की । उस समय, श्रीनिवास अगस्त्याश्रम से नारायणपुर गये । वसुदास और तोंडमान को सांत्वनाएँ पहुँचायी । उनके दुःख का उपशमन हुआ । पिता की मृत्यु से दुःखित पद्मावती को ढ़ाढस दिया ।

यहाँ तक श्रीनिवास के चरित का श्रवण करनेवाले शौनकादि ऋषियों ने सूत मुनि से पूछा - ''हे योगि पुंगव ! आकाश राजा की मृत्यु के बाद कौन राजगद्दी पर बैठे ? पुत्र वसुदास या भाई तोंडमान ?''

सूत मुनि आगे की घटनाएँ बताने लगे -

32. वसुदास और तोंडमान के बीच युद्ध

''हे मुनिवर ! आकाश राजा के बाद तोंडमान ने घोषणा की कि राज्याधिकार मेरा ही होगा । वसुदास ने भी इसी प्रकार की इच्छा प्रकट की । दोनों के बीच कलह हुआ ।

आन्तरिक कलह का पर्यवसान युद्ध ही रहा। तोंडमान ने कहा कि युद्ध में जो विजयी होगा अधिकार उसी का होगा। वसुदास भी युद्ध के लिए तैयार हो गया। दोनों ने अपनी-अपनी सेनाएँ तैयार की।

तोंडमान, श्रीनिवास का परम भक्त था। वे श्रीनिवास के पास पहुँचे। स्थिति पर विचार व्यक्त करते हुए सहायता की माँग की।

श्रीहरि असमंजस में पड गये - 'अगर मैं तोंडमान के पक्ष में जाकर सहायता करूँ तो पद्मावती रूठेगी। वसुदास के पक्ष में जाने पर पद्मावती को आनन्द तो होगा। लेकिन तोंडमान मेरा परम भक्त है। इस संदर्भ में मैं किसी एक के पक्ष में जाने की स्थिति में नहीं हूँ। अब क्या करूँ ?''

सोच समझकर तोंडमान को विजय सिद्धि का विश्वास दिलाते हुए सहायता के लिए श्रीहरि ने उन्हें अपना चक्रायुध दिया।

तत्पश्चात् वसुदास भी आया। सहायता की प्रार्थना की। उसकी इच्छा के अनुरूप उसके साथ श्रीनिवास नारायणपुर पहुँचे। साले के पक्ष से संग्राम घोष दिलवाया। युद्ध की भेरी भजवायी।

दोनों पक्षों के बीच घन-घोर युद्ध चल रहा था। तोंडमान ने श्रीहरि के चक्र का प्रयोग वसुदास पर किया। श्रीहरि का कर्तव्य वसुदास को भी बचाना था। वे वसुदास के सामने पहुँचे। चक्र ने श्रीहरि को घायल मात्र किया। मूर्छित होकर हरि रथ पर गिरे।

तब तोंडमान और वसुदास दोनों ने युद्ध रोका। श्रीहरि के उपचार करने में लगे। कुछ ही समय में श्रीनिवास होश में आये। तब तोंडमान ने सम्मानपूर्वक श्रीहरि से कहा - ''हे हरि ! मेरे द्वारा प्रयोगित आपके

चक्र ने आपको ही आहत किया। मुझे अब घोर पाप लग गया है। इस पाप के परिहारार्थ मैं काशी जाऊँगा। मुझे क्षमा कीजिए। काशी जाने की अनुमति दीजिए। अब मुझ में राज्य का मोह नहीं रह गया। राज्याधिकार वसुदास को ही दे दीजिएगा। मुझे वैराग्य प्रदान कीजिए।''

तब श्रीहरि ने वसुदास की ओर देखा। दृष्टि में प्रश्न छिपा था कि अब तुम्हारा अभिमत क्या है। वसुदास ने विनम्र होकर कहा - ''हे श्रीनिवास ! मेरी रक्षा के लिए आप आये और स्वयं आहत हुए। चक्र का वार आप पर हुआ। पाप तो मेरा ही है। पाप के परिहार के लिए मैं रामेश्वर जाऊँगा। राज्याधिकार चाचाजी को ही दे दीजिएगा।''

दोनों की बात श्रीहरि ने सुनी। शुकयोगी को बुलाकर कर्तव्य निर्णय का भार उन पर डाला। शुक जी ने मन की बात कही - ''हे भगवान ! दोनों को कहीं जाने की आवश्यता नहीं। विरागी होने का कोई कारण नहीं है। भाईयों के बीच राज्य का विभाजन कीजिए। आकाश राजा का भाग वसुदास को और तोंडमान का भाग उन्हें देना ही समुचित है।'' यह शुक योगी का अपना शुभ निर्णय था।

श्रीनिवास ने राज्य का विभाजन उपयुक्त रूप में किया। दोनों को अपना-अपना राज्य भाग सौंपकर श्रीनिवास पद्मावती के पास चले गये।

तोंडमान को अर्द्ध राज्य तो मिला। उनमें राज भोग लालसा नहीं रही। श्रीनिवास पर भक्ति की भावना बढ़ती ही गयी। वे समझने लगे कि श्रीनिवास नर रूप में नारायण ही हैं।

33. विश्वरूप प्रदर्शन

एक दिन तोंडमान अगस्त्याश्रम में आये । श्रीनिवास को दण्डवत प्रणाम किया । भगवान प्रसन्न हुए । उन्हें अपने विश्वरूप दर्शन का अवसर प्रदान किया । तोंडमान पुलकित हुए । भगवान की अनेक प्रकार से स्तुति की । दिव्य रूप की सन्नुतियाँ की ।

34. मंदिर - निर्माण

उसके बाद श्रीनिवास ने तोंडमान से अपने लिए वेङ्कटाद्रि पर एक मणिमय और सुवर्णमय मंदिर निर्मित करके देने लिए कहा । इस वक्त श्रीहरि ने तोंडमान के पूर्व जन्म की बात भी कही । पूर्व जन्म में तोंडमान रंगदास नामक भक्त थे । तिरुमल पर वे भगवत्कैंकर्य में समर्पित भक्त थे । सुनकर उन्हें अमित संतोष हुआ ।

तत्पश्चात् तोंडमान ने देवशिल्पी विश्वकर्मा को बुलवाया । उसके साथ वेङ्कटाचल पहुँचे । वहाँ शिल्प शास्त्र के अनुसार तीन प्राकार, दो शिखर, सप्त द्वार, आस्थान मंडप, मुख मंडप, गोशाला, धान्य शाला, रसोई घर आदि से संबंधित सुंदर मंदिर का निर्माण करवाया राजा तोंडमान ने ।

निर्माण के संपन्न होने के बाद तोंडमान अगस्त्याश्रम पहुँचे । श्रीहरि से सविनय निवेदन किया - ''हे श्रीनिवास ! आपकी इच्छा के अनुरूप मंदिर निर्मित हो गया है । आप पद्मावती समेत वहाँ पधारिएगा । मैं आपका भक्त किंकर होकर आपकी सेवा करूँगा।''

35. आनंद निलय प्रवेश

राजा तोंडमान की प्रार्थना पर श्रीनिवास ब्रह्मा, शुक योगी, अगस्त्य को साथ लेकर पद्मावती समेत वेङ्कटाचल पहुँचे । मंगल वाद्य नादों के

बीच विकृति नाम संवत्सर अश्वनी नक्षत्र युक्त गुरुवार के दिन शुभ मुहूर्त में पुण्याह वचन आदि मंगल कार्यों का निर्वहण कर आनंद निलय प्रवेश किया । ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता समूह ने उस समय पुष्प वृष्टि करवायी । श्रीनिवास की स्तुति की ।

वैखानस आगम विधि के अनुसार द्विजों ने द्वार पर द्वारपालकों की प्रतिष्ठा की और श्रीहरि की पूजाएँ की । श्रीहरि पद्मपीठ पर पैर धरकर खडे हुए । बाएँ हाथ को कटि प्रान्त में रखा । दक्षिण हस्त दक्षिण पाद की ओर संकेत कर रहा था । श्रीनिवास ने ब्रह्मादियों से कहा कि 'यह परम पद है' ।

ब्रह्मा ने वेङ्कटेश्वर की सन्निधि में दो अखण्ड दीप रखे और घोषणा की - ''ये अखण्ड दीप कलियुगांत तक जलते ही रहेंगे । जब तक ये जलते रहेंगे तब तक यह दिव्य विमान रहेगा । युगान्त में ये अखण्ड दीप बुझेंगे । आनंद निलय पर विराजित दिव्य विमान ढहेगा । तब श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी श्रीवैकुण्ठ वापस पधार कर वहाँ विलसेंगे । तत्पश्चात् पुन : कृत युग का आरंभ होगा । यह नया कृत युग होगा । उसके बाद तीन युगपर्यन्त (कृत, त्रेता और द्वापर) वे वैकुण्ठ में रहेंगे । फिर कलियुग में शेषाद्रिवासी होंगे ।''

तब श्रीनिवास ने ब्रह्मा को आदेश दिया - ''हे परमेष्ठी ! तुम यहाँ मेरे लिए रथोत्सव का निर्वाह करो ।''

ब्रह्मा ने आदेश पाकर तोंडमान के द्वारा वैखानस आगम के अनुसार अंकुरार्पण, ध्वजारोहण, विविध वाहन सेवाएँ, रथोत्सव, चक्रस्नान आदि दैव कार्यों के निर्वहण की व्यवस्था करायी । अनेक प्रकार के अन्ननैवेद्यों को अर्पित करवाया । इस व्यवस्था से श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी अत्यंत प्रसन्न

हुए । (यही व्यवस्था आगे 'ब्रह्मोत्सव' विधान में परिणत हो गयी।) उत्सव में भाग लेने के लिए आये समस्त देवता गण अपने-अपने लोकों में वापस चले गये । अन्त में ब्रह्मा भी सत्य लोक वापस लौट गये ।

तोण्डमान ने धर्मानुसार राज शासन व्यवस्था चलाते हुए श्रीवेङ्कटेश्वर के लिए अनेक उत्सवों की व्यवस्था की और चलायी । नित्य प्रति सुवर्ण कमलों से श्रीनिवास की अर्चा भी करते रहे ।

36. भक्त भीम को सायुज्य

भीम एक कुम्हार था । भक्ति संपन्न भीम ने श्रीवेङ्कटेश्वर की एक दारु मूर्ति को अपनी कुटी में रखा । नित्य उनकी पूजा मिट्टी के फूल बनाकर किया करता था । ये फूल श्रीनिवास की सन्निधि में पहुँच जाते थे । श्रीनिवास उन्हें छिपा कर रखते थे । तोंडमान की हष्टि में पडने नहीं देते थे, क्योंकि तोंडमान रोज सुवर्ण कमलों से उनकी पूजा करते थे ।

श्रीनिवास मानते थे कि सुवर्ण कमलों की पूजा राजस पूजा है । एक दिन भगवान ने सुवर्ण पुष्पों के बीच मिट्टी के फूलों को तोंडमान की दृष्टि में पडने दिया । राजा ने सोचा - ''ये मिट्टी के फूल कहाँ के हैं ? मेरे सुवर्ण पुष्पों को हटाकर उनके स्थान पर मिट्टी के फूल किसने रखे ?'' तोंडमान ने श्रीहरि से पूछा ।

तोंडमान से भगवान श्रीनिवास ने कहा - ''यहाँ से ढाई कोस की दूरी पर 'कुर्वक' नामक एक छोटा-सा गाँव है । उसमें भीम नामक एक कुम्हार है । वह अत्यंत गरीब है । घडे बनाकर उन्हें बेचकर अपना जीवन व्यतीत करता है । घडे बनाते बनाते उगलियों पर लगी मिट्टी से,

हाथों पर लगी मिट्टी से फूल बनाकर मेरी दारु मूर्ति (लकडी से बनी मूर्ति) को, जिसे उसने अपने घर में प्रतिष्ठित किया, उसे भक्ति से अर्पित करता है । उसकी पूजा नित्य प्रति चलती है ।''

इस बात को सुनकर राजा तोंडमान आश्चर्यचक्ति हुए । अपनी पूजा समाप्त कर भीम के पास जाने के लिए निकल पडे । गाँव में पहुँचे ।

भीम ने अपनी झोंपडी के पास आये राजा को देखा । आश्चर्यचक्ति हो गया । राजा से विनम्र होकर कहा - ''हे प्रभू ! आपका यहाँ आना मुझे आश्चर्य में डाल रहा है । आदेश देते, तो मैं ही आप के पास आता ।'' राजा ने उससे कहा - ''हे भीम ! तुम्हारी भक्ति से श्रीहरि प्रसन्न हुए हैं । उन्होंने स्वयं यह बात मुझसे कही है । मैं तुम्हारी भक्ति का आंतर्य समझना चाहता हूँ । बताओ न ! ''

तब कुम्हार भीम ने राजा से कहा - ''हे राजन ! मैं शूद्र हूँ । जडमति हूँ । विष्णु - भावना के बारे में कहने का सामर्थ्य मुझमें कहाँ है ?''

उसी वक्त गरुड पर आरूढ़ हो विष्णु भगवान वहाँ आ पहुँचे । भीम को संबोधित कर कहा - ''हे पुण्य पुरुष ! मेरे पास आओ ! तुम्हें मैं सायुज्य प्रदान कर रहा हूँ ।'' तब भीम, पत्नी समेत श्रीनिवास के सामने प्रणमित हुआ और सायुज्य पद ग्रहण किया ।

आँखों के सामने की घटना से प्रभावित तोंडमान ने प्रभु से पूछा - ''हे कमलाक्ष ! मैं भक्तवर भीम से बात कर ही रहा था । मुझे उससे कोई उत्तर मिला ही नहीं इतने में आपने सायुज्य मोक्ष प्रदान कर दिया ! अब बताइए आप मुझ पर अनुग्रह कब करनेवाले हैं ?''

श्रीहरि ने तोंडमान के प्रश्न पर मुस्कुराते हुए कहा - ''भीम की भक्ति सात्विक भक्ति है । उसे स्वीकार कर मैं ने उसे परमपद प्रदान किया है । इससे पहले ही भीम ने मुझसे मोक्ष की प्रार्थना की थी । मैं ने उससे कहा था कि तुम्हारी पूजा विधि जब दूसरे जानेंगे, जब राजा तुम्हारी झोंपडी तक आयेगा तभी तुम्हें और तुम्हारी पत्नी को सायुज्य मोक्ष प्रदान करुँगा । अब आज यह घटित हुआ है और उसे मोक्ष प्राप्त हो गया है ।''

श्रीनिवास ने फिर तोंडमान से आश्वासन के स्वर में कहा - ''अब तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है । अपने पुत्र को गद्दी सौंप दो । भक्ति और वैराग्य भावनाओं को हृदय में भरकर एकांत में मेरा ध्यान करते रहो । मैं तुमको भी मुक्ति प्रदान करुँगा ।''

तोंडमान निज निवास पहुँचे । अपने पुत्र श्रीनिवास को राज्याभिषिक्त किया । श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी के चरणारविंदों में अपने मन को रखकर नित्योत्सवों का निर्वहण करते समय बिताने लगे । भक्ति और ज्ञान बढाने लगा । वे महाविरक्त हुए । एकांत में जाकर तब तोंडमान, श्रीनिवास के ध्यान में रत हो गये ।

37. तोंडमान को सारूप्य - प्रदान

कुछ समय बीता । श्रीहरि करुणा समुद्र हैं । वे स्वयं तोंडमान के पास गये । राजा ने भक्ति प्रपत्तियों के साथ उनसे विनती की ।

प्रसन्न होकर स्वामी ने तोंडमान से कहा - ''हे तोंडमान ! अब तुम भक्तिनिष्ठ हुए हो । तुम्हें मुक्ति प्रदान करूँगा । बताओ क्या अभी चाहिए अथवा कुछ समय बाद ?''

तोंडमान ने अब देरी न करने की प्रार्थना की और शरणाति पायी । भगवान ने अनुग्रह किया । उन्हें सारूप्य प्रदान कर पुष्पक विमान से वैकुण्ठ भेजा । फिर लौटकर अपने मंदिर में आ गये ।

तोंडमान के पुत्र श्रीनिवास ने अपने पिता के लिए आवश्यक कर्मकाण्ड विधि का निर्वाह किया । श्रीनिवास ने भगवान श्रीनिवास के पद कमलों पर राज्य भार रखा । वसुदास के साथ मिलकर भगवान के नित्योत्सव, वारोत्सव, पक्षोत्सव, मासोत्सव तथा वर्षोत्सव के निर्वाह में भक्ति के साथ लग गये ।

38. अर्चामूर्ति का आविर्भाव

भगवान ने वसुदास और श्रीनिवास पर अनुग्रह वर्षा की । मौन मुद्रा ली । अब श्रीमन्नारायण शिलामूर्ति बन गये । इसी रूप में वैभव प्राप्त करने लगे । पद्मावती समेत होकर भक्तों की इच्छाएँ पूरने लगे । भक्तों के द्वारा मिलनेवाली मनौतियों को स्वीकारते हुए शेषाद्रि पर विलसने लगे ।

अब भी, आज भी देवदेव श्रीनिवास का अनुग्रह सुलभ प्राप्य है । श्रीवेंकटेश्वर स्वामी की ख्याति दसों दिशाओं में व्याप्त है । भक्तों से धन प्राप्त कर कुबेर को सूद चुकाते हुए अपने वचन को भी निभा रहे हैं ।

स्वामी की लीलामानुष के रूप में प्रकटित लीलाएँ अनगिनत हैं । कलियुग के प्रत्यक्ष देव हैं बालाजी ! लाखों भक्त उनकी सेवा में रत हैं । तिरुमल क्षेत्र कलियुग वैकुण्ठ ही है ।''

सूत मुनि ने शौनकादि मुनियों को इस प्रकार श्रीहरि की गाथा सुनाई । सुनकर मुनिगण ने असीम आनन्द पाया । सूतजी की भूरि-

भूरि प्रशंसा की । अंतिम प्रश्न उनका था - ''श्रीनिवास क्यों पाषाण रूपी हुए है ?'' समुचित शंका ही थी । सूत मुनि बताने लगे -

''हे महात्मा ! श्रीनिवास अपने निजरूप दर्शन सबको नहीं देते । सकल भक्तों को सुलभ दर्शन प्रदान करने के लिए उपयुक्त रूप में अपने चिह्नों का प्रदर्शन करते हैं । ताम्र मूर्ति, शिला मूर्ति, मृत्तिका मूर्ति, दारु मूर्ति रूप ही ऐसे रूप हैं । ऐसे ही रूपों में सुलभ रूप से भक्तों को प्राप्त होकर अनेक नामों में विलसित हो भक्त कोटि से पूजाएँ लेते हैं और उनपर अनुग्रह दृष्टि प्रसरित करते हैं ।

ये अर्चा मूर्तियाँ हैं तथा श्रीहरि के चिह्न हैं । उनकी मूर्ति चर्म चक्षु गोचर रूप हैं । मूर्तियों को भक्त अपनी आँखों से देखते हैं । इससे भगवान उनकी मनो दृष्टि के लिए भी सुलभ गोचर होते हैं । चाहे किसी दृष्टि से भक्त भगवान को देखें वे भक्तों के मनोमालिन्य को दूर करते हैं । अर्चा मूर्तियाँ ही सर्व जन सुलभ मूर्तियाँ हैं । प्रतिमाओं के द्वारा हरि का सर्वान्तर्यामी रूप स्पष्ट होता है । इसे भक्तों को समझना है । उसका अनुभव पाना है । इसी के द्वारा भक्तों को अनिरुद्ध - प्रद्युम्न - संकर्षण - वासुदेवात्मक - व्यूह प्रभाव का ध्यान करना है । परम गति की प्राप्ति के लिए अर्चा रूप परम हेतु हैं । सर्व जन रक्षार्थ ही श्रीनिवास अर्चा रूप में विलसित हैं । आदि देव का मंगल हो ।''

सूत जी के वचनों में वेङ्कटपति के विभव को सुनकर मुनि गण धन्य हुए । सूत की प्रशांसाओं के साथ शुभ गोष्टी समाप्त हुई ।

* * *

चतुर्थ प्रकरण

श्रीनिवास के अर्चावतार गाथा को सुनकर शौनकादि मुनि संतसित हुए । लेकिन कुछ कमी रह ही गयी । उन्होंने सूत जी से पूछा -

''हे योगिपुंगव ! श्रीनिवास चरित श्रवण ने तो हमें आत्मानंद प्रदान किया । प्रभु गाथा अनवरत तुष्टि देनेवाली ही है । आपने कहा था कि श्रीनिवास का पद्मावती से विवाह होने के बाद श्री महालक्ष्मी कोलहापुर वापस लौट गयी । क्या लक्ष्मी देवी उनके मन में रही या नहीं ? क्या श्रीनिवास जी लक्ष्मी को भूल गये ? क्या उनको विस्मृत किया? वक्षःस्थल पर उनको स्थान दिया कि नहीं ? इस पर कुछ स्पष्ट गाथा बताइएगा ।''

सूत, इस प्रश्न को सुनकर मुस्कुराये । व्यास जी का स्मरण किया । आगे कहने लगे -

''आज आपने मुझसे यह प्रश्न किया है । इसी तरह पहले देवल ने देवदर्शन से इसी प्रकार का प्रश्न किया था । देवदर्शन ने देवल को जो समाधान दिया था, वही आप को बताता हूँ । श्रद्धा से सुनियेगा !

39. लक्ष्मी देवी को लेकर श्रीवेङ्कटेश्वर की चिंता

पद्मावती श्रीवेङ्कटेश्वर के पास रही हैं, फिर भी वे रमादेवी को भूले नहीं । उनके बाद उनका स्मरण किया । कुछ वर्ष ऐसे ही बीत गये । श्रीनिवास ने सोचा कि उनको पास बुलाये बिना चुप रहना किसी प्रकार से उचित नहीं है ।

पद्मावती, अपने पति के हृदय की बात जान गयी । एक दिन उन्होंने पतिदेव को संबोधित कर कहा - ''हे नाथ ! लगता है कि आपका

मन चिन्ताक्रान्त है । क्या आपकी चिंता का कारण मैं जान सकती हूँ ?'' श्रीनिवास ने भी उस वक्त समझ लिया कि अब पद्मावती को चिंता का कारण बताये बिना नहीं रह सकता । स्वामी ने तब कहा - ''पद्मावती ! जब ब्रह्माण्ड में सृष्टि ही नहीं हुई थी, तब मैं निर्गुण ब्रह्म के रूप में रहा । अकेला ही रहा । उस समय लक्ष्मी चिद्रूपिणी बनकर मेरे पास पहुँची । उन्होंने मुझे अत्यंत आनंद दिया । लक्ष्मी के साथ जुडने के बाद ही मैं विश्वकर्ता बना हूँ । सृष्टिकर्ता हुआ हूँ । मेरी जो महत्ता है वह सब उन्हीं के कटाक्ष का फल है । अब वे मुझसे बिछुड कर चली गयी हैं । उनकी चिंता ने अब मुझे ग्रसा है । जब से लक्ष्मी ने मुझे छोडा तब से मैं ने अनेक कलोष भोगे हैं । अनेक कष्ट झेले हैं । विवाह के लिए मैं ने जो कर्ज लिया था, वह भी आज तक नहीं चुका है ।''

पद्मावती ने पति की बात सुनकर कहा - ''नाथ ! आपके बडप्पन के लिए कारक लक्ष्मी जी से आप कैसे दूर रह सकते हैं ? यह ठीक नहीं है ! किसी प्रकार से उन्हें समझा - बुझाकर यहाँ लाना ही समुचित होगा । वे भी यहाँ आयेंगी तो मुझे आप दोनों की सेवा का भाग्य मिलेगा । चलिए, हम दोनों मिलकर जायेंगे, उन्हें साथ अवश्य लायेंगे ।''

श्रीहरि ने तब कहा - ''पद्मावती ! अकेली रहकर तुम अब अत्यंत संतोष का अनुभव कर रही हो । लक्ष्मी जी आकर अगर मेरे वक्षःस्थल पर वास बनायेंगी तो क्या सहन कर सकोगी ?''

पति की बात सुनकर पद्मावती ने कहा - ''स्वामी ! लक्ष्मी जी आप के वक्षःस्थल पर विलसेगी तो मुझे किस प्रकार की कमी होगी ? जब वे सीता थीं तभी उन्होंने मुझे स्वीकारने की प्रार्थना आप से की है न !

किसी भी ढ़ंग से उन्हें मनवाकर साथ लाना ही है । इस कार्य में मैं अवश्य सफल हूँगी ।''

''पद्मावती ! तुम्हारी बातें मुझे अत्यंत संतोष - दायक रही हैं । तुम वकुलादेवी के पास ही रहो । मैं जाकर लक्ष्मी देवी को बुलाकर साथ लाऊँगा ।''

40. श्रीलक्ष्मी का पाताल में पहुँचना

पद्मावती - श्रीनिवास के संवाद को कोलहापुर - वासिनी लक्ष्मी ने अपनी भावना शक्ति से समझा । - ''अगर अब श्रीहरि आयेंगे तो मैं न नहीं कह सकती । वेङ्कटाद्रि जायेंगी तो पद्मावती अवश्य चिंतित - व्यथित होंगी । साथ न चलूँगी तो हरि दुःखित होंगे ।'' लक्ष्मी जी ने निर्णय लिया कि उनका अब वेङ्कटाद्रि जाना उचित नहीं होगा । बस, कोलहापुर छोड पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचीं ।

श्रीहरि कोलहापुर गये । वहाँ लक्ष्मी का अन्वेषण किया । उन्हें पता चला कि लक्ष्मी जी अब वहाँ नहीं हैं । रमा के वियोग ने हरि को व्यथित किया ।

वहाँ लक्ष्मी देवी के स्वरूप को अर्चारूप में प्रतिष्ठित कर ठहर गये । हरि ने बारह वर्षो के लिए वहाँ तपस्या की । एक दिन आकाशवाणी हुई । हरि ने कान देकर मन से सुना -

41. आकाशवाणी

''हे देव ! रमा देवी अब आपको यहाँ दिखाई नहीं देगी । यहाँ से आप वापस जाइए । शेषाचल के पास प्रवाहमान सुवर्णमुखी नदी तट पर जाकर तपोनिष्ठ हो जाइए । स्वर्ग से स्वर्ण कमल मँगवाकर वहाँ

प्रतिष्ठित कीजिए । सुवर्णमुखी की पूर्व दिशा में स्वर्ण कमल को प्रतिष्ठित कीजिए । भगवान सूर्य देव मुरझाने नहीं देंगे । आप उस पद्म पर ही दृष्टि केन्द्रित कर रमा की अर्चा कीजिए । वे अवश्य प्रत्यक्ष होंगी । आपको वहाँ बारह वर्ष पर्यन्त लक्ष्मी मंत्र का जप करते हुए तपस्या करनी है । तभी वे प्रसन्न होंगी । उन्हें तब अपने वक्षःस्थल पर ठहराइयेगा ।''

श्रीनिवास ने नयन खोले । आकाशवाणी की बातें समझीं । गरुड का स्मरण किया । वे आये । उनपर चढ़कर वेङ्कटाचल पहुँचे । फिर वहाँ से उस गिरि के पास स्थित अगस्त्याश्रम में गये । वहाँ से पूर्व की दिशा में स्थित सिद्ध स्थल पहुँचे ।

42. श्रीवेङ्कटेश्वर की तपस्या

वहाँ पहुँचकर श्रीहरि ने वायु देव का स्मरण किया । उनको आदेश देकर स्वर्ग से सहस्रदल कमल मँगाया । कुंतल से गोकर्ण सम गड्ढा खुदवाया । उसमें उस कमल को बोया । उसकी पूर्व दिशा में सूर्य की भी प्रतिष्ठा की ताकि कमल रात में बंद न हो जाये । पद्म सरोवर की पश्चिम की दिशा में पद्मासन लगा कर बैठे । अपनी दृष्टि पद्म पर केन्द्रित कर पूर्ण मन से लक्ष्मी के ध्यान में लीन हो गये ।

वे तपस्वी स्वयं विष्णु ही हैं, पर इसे न समझने के कारण इन्द्र ने रंभादि देव वनिताओं को उनके तपो भंग के लिए भेजा । उनके हाव-भाव स्वामी को विचलित नहीं कर सके । उनको सबक सिखाने के लिए स्वामी ने एक विश्वमोहिनी की सृष्टि की । उसके सौंदर्य को देखकर रंभादि वनिताएँ लज्जित हुई । अन्ततः स्वामी के निज स्वरूप को

समझकर इन्द्र लोक लौट ही गयीं । वहाँ उन्होंने बीती स्थिति जतायी । इन्द्र ने पश्चात्ताप किया ।

तब तक श्रीहरि को वेङ्कटाद्रि छोडकर 22 वर्ष बीते । उधर पद्मावती चिंताग्रस्त हो गयी । वकुलामाता के पास जाकर अपनी चिंता व्यक्त की । उन्होंने उपयुक्त वचनों से उन्हें सांत्वना दी ।

वहाँ पाताल में अपने पति की तपस्या को लेकर श्रीलक्ष्मी भी परेशान हुईं । एक दिन कपिल महर्षि के पास जाकर लक्ष्मी ने उनसे कहा - ''हे मुनींद्र ! श्रीनिवास ने पद्मावती का करग्रहण किया है । अब मेरे लिए तपस्या कर रहे हैं । ऐसी स्थिति में मेरा कर्तव्य क्या है ? आप ही बताइएगा ।'' उन्हें यह भी बताया कि हरि से बिछुडने का एक मात्र कारण भृगु का पदाघात ही है ।

43. कपिल महामुनि के हित - वचन

लक्ष्मी की वेदना को समझकर कपिल महर्षि ने उनसे ऐसा कहा - ''क्या आप यह नहीं जानती कि भृगु आपके पौत्र हैं ? यह बात श्री हरि ने आपको नहीं बताया क्या ? आप पति को ठीक तरह से समझे बिना उनकी बात पर ध्यान दिये बिना उन्हें छोडकर, रूठकर कोलहापुर आयी हैं । यह कहाँ तक उचित है ? श्रीहरि को भृगु का पादस्पर्श मान्य रहा है तो आपको क्यों मान्य नहीं रहा ? भृगु ने क्या गलती की है ? त्रिमूर्तियों की योग्यता की परीक्षा लेने के क्रम में ही वे वैकुण्ठ आये थे । ब्रह्मरुद्रादियों से श्रीहरि को श्रेष्ठ निरुपित करने के उद्देश्य से ही भृगु ने ऐसा व्यवहार किया था । उन पर अभियोग लगाकर आपने पति को त्यागा है । गलती आप की ही है न ?''

अपनी बात को जारी रखते हुए कपिल मुनि ने और कहा - ''श्रीहरि करुणा भाव सिक्त होकर आपको साथ ले जाने के लिए ही कोलहापुर आये । जानबूझकर आपने फिर एक गलती की । यह व्यवहार पतिव्रता के लिए शोभा नहीं देती । बाईस वर्ष बीत गये हैं । श्रीहरि आप के लिए तपस्या रत हैं । उन्हें छोड आपका इस तरह रहना उचित नहीं है । आप अभी जाइए । श्रीहरि द्वारा प्रतिष्ठित पद्म के नाल मार्ग से पति के पास जाइए । विकसित पद्म में आप पद्मनाभ को देखिएगा । ब्रह्मादि देवता समूह भी तब तक वहाँ पहुँचेगी । सबके सामने आप पुन : चक्रि वक्षःस्थलवासिनी हो जाइयेगा ।''

श्रीलक्ष्मी को कपिल महर्षि की बातें अच्छी लगीं । अपनी भूल समझी । विष्णु द्वारा आराधित कमल में प्रवेशित होने का निर्णय लिया । बात महर्षि के सामने रखी ।

श्रीलक्ष्मी के निर्णय पर ऋषि को आनंद हुआ । उन्होंने कहा - ''हे लोकमाता ! आप नित्यानपायिनी हैं । श्रीविष्णु के सभी अवतारों में आपने भी अवतार लिया है । आप धन्य हैं । आप आदि-दंपति हैं । तीनों लोकों के सृजक और कारक आप ही हैं । एक विशिष्ट कार्य साधने के लिए ही आपके बीच यह वियोग घटित हुआ है । मैं ने कह दिया था कि आपने गलती की थी । इस पर आप नाराज मत होइए । मैं ने केवल सूझी बात ही कही है ।''

मुनि के वचन सुनकर लक्ष्मी जी ने प्रत्युत्तर में कहा - ''हे मुनीद्र! पहले आप से बात कहने से अच्छा ही हुआ । मुझमें व्याप्त विरोधी भावना पूर्ण रूप से दूर हो गयी है । मेरे मन में एक कसक थी कि मैं पद्मावती सहित हरि के उर पर कैसे रहूँगी । इसी को मन में भरकर आपके पास आयी । आपके आश्रम में रही । अब मैं स्वस्थ हुई हूँ।''

लक्ष्मी की बात से संतसित मुनि ने कहा - ''हे लक्ष्मी देवी ! श्री महाविष्णु ने कृष्णावतार में हजारों गोपिकाओं को उतने ही रूपों से आनंद प्रदान किया है न ! तब क्या आपने हरि को त्यागा था ? मेरे आश्रम को पवित्रता प्रदान करने के लिए ही आप यहाँ आयी हैं । इस के बाद आप शेषाद्रि पर पति के साथ स्थिर रहिएगा ।''

श्रीलक्ष्मी ऋषि की बातों से उल्लसित हुईं । रमा ने अपने पूर्व शरीर को तपोनिष्ठ बनाकर आश्रम में ही प्रतिष्ठित किया । दिव्य शरीर धारण किया ।

44. व्यूह लक्ष्मी का आविर्भाव

श्रीलक्ष्मी कमल के नाल से प्रवेश कर उसी मार्ग से पद्मसरोवर में विलसित पद्मकर्णिका में सुखासीन हो गयी । उस समय लगा कि एक बिजलियों का समूह पद्मसरोवर में कौंद गया ।

श्रीविष्णु भगवान ने आँखें खोलीं । श्रीलक्ष्मी को आँखों के सामने प्रत्यक्ष पाया । परमानंद का अनुभव किया । श्रीलक्ष्मी ने भी श्रीहरि के वदन की ओर देखा । फिर लज्जा से सिर झुकायीं । उनके लिए तपस्यारत श्रीहरि की जटाएँ और उनका कृशित शरीर को देखकर बहुत व्यथित हुईं ।

विष्णु भगवान ने तब सकलाभरण भूषित हो शंख - चक्र धारण किया । नील घनश्याम शरीर हो श्रीलक्ष्मी को दर्शन दिया । श्रीदेवी अतिशय अनुराग से उनकी ओर देखती रह गयीं । विष्णु भगवान मौन ही रहे ।

इसी बीच ब्रह्मरुद्रादि देवता गण पद्मसरोवर के पास पहुँच गया । मंगल वाद्य बजे । पुष्प वर्षा हुई । श्रीदेवी और श्रीहरि का नाना विध

स्त्रोत्र - गीतों से यश गान हुआ । उनकी वंदना की । तब कमल पर शोभित श्रीलक्ष्मी को संबोधित कर ब्रह्म - रुद्रादि ने प्रार्थना स्वर में कहा - ''माता ! आप पुन : स्वामी के वक्षःस्थल पर विराजमान हो जाइए । उरवासिनी बनकर शेषाद्रि से हमें अनुग्रहीत कीजिएगा ।''

45. विष्णु वक्षःस्थलवासिनी लक्ष्मी

आगे कहा - ''आज कार्तिक मास का पंचमी तिथि युक्त शुक्रवार का दिन है । उत्तराषाढ़ा नक्षत्र लगा है । यह दिन अत्यंत शुभ दिन है । आपको अभी विष्णु वक्षःस्थलवासिनी बनना है । अब देरी क्यों ?''

लक्ष्मीदेवी कुछ नहीं बोलीं । ब्रह्म ने भृगु महर्षि को देखकर मौन संकेत किया । तब भृगु श्रीदेवी के सामने आये और प्रार्थना भरे स्वर में कहा - ''हे माता ! आप मुझे क्षमा कीजिए । मुझे अपना पुत्र मानिएगा । हरि के वक्षःस्थल पर विराजित हो जाइए ।''

भृगु की प्रार्थना सुनकर लक्ष्मी जी ने सहज प्रेम और संतोषातिरेक से समाहत भाव से कहा - ''मुनि ! तुम्हारी दृढ़ भक्ति और अनुपम साहस से मैं अभिभूत हुई हूँ । सत्वगुण से युक्त मेरे पति देव को अपमानित कर रूठकर उस दिन चली गयी । रजोगुण के प्रभाव में आने के कारण मैं भविष्य की गतियों को समझ नहीं पायी थी । उसका परिणाम ही था पति का वियोग । परदेश वासिनी भी हुई । पति से ही मैं ने कठिन तपस्या करवायी । काल गति का अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता । यह तुम्हारी गलती नहीं है । मेरी भी गलती नहीं है । कपटनाटक सूत्रधारी श्री हरि का विनोद मात्र ही है । श्रीहरि की लीलाएँ श्रीहरि ही जानते हैं !''

भृगु को श्रीलक्ष्मी से सांत्वना मिली । तब लक्ष्मी देवी ने श्रीहरि के पदकमलों पर अपनी दृष्टियाँ रखीं । भक्ति और प्रेम के प्रवाह में सिक्त होकर स्वर्ण कमल में स्तब्ध रहीं ।

श्रीलक्ष्मी ने ऐसा माना था कि श्रीहरि स्वयं उन्हें अपने वक्षःस्थल पर जगह देंगे । पर ऐसा नहीं हुआ । तब ब्रह्मरुद्रादि ने हरि को नमन कर कहा - ''हे जगदीश्वर ! आप सागर कन्या को वक्षःस्थल पर जगह दीजिएगा ।''

तब श्रीहरि ने उनसे कहा - ''यह वक्षःस्थल तो श्रीलक्ष्मी का हमेशा से वास स्थल रहा है । आप ही उनसे कहिए कि आकर मेरे वक्षःस्थल पर विराजें ।''

तब देवताओं ने लक्ष्मी देवी से प्रार्थना की - ''हे जगन्माता ! आप जगन्नाथ के वक्षःस्थल वासिनी हो जाइए । यही शुभ लग्न कल्याण दायक है । देरी मत कीजिए ।''

तब सकलाभरण भूषिता लक्ष्मी के शरीर से पुष्प का सौरभ चारों दिशाओं में व्याप्त हुआ । वे जिस प्रकार क्षीर सागर से उद्भूत होकर श्रीहरि के पास पहुँची थी, उसी तरह कमला विकसित स्वर्ण कमल वास से पति की उर वासिनी बनीं । हरि ने स्वयं अपने हाथों से लक्ष्मी को अपने वक्षःस्थल पर रखा था । तभी पुष्प वृष्टि हुई । देव दुंदुभियाँ भी बजीं । इन्द्रादि देवता समूह हरि के सामने प्रणमित हुआ । रंभादि अप्सराओं ने नृत्य किया । गांधर्वों ने गीत गाया । कश्यपादि मुनि समूह ने निगमांत सूक्तियों से हरि का यश गाया । सरस्वती और पार्वती ने मंगल आरतियाँ दीं । शिव और ब्रह्मा ने तापसों के साथ समवेत स्वर में वेद का पारायण किया । श्रीहरि अमित आनंदित हुए । गरुड वाहन पर आसीन हो गये ।

शिव और ब्रह्मा ने संयुक्त रूप से उस समय घोषणा की कि ''कार्तिक शुद्ध पंचमी के दिन पर श्रीमहालक्ष्मी पद्मसरोवर में कमल से उद्‌भूत हुई हैं। आज का दिन अत्यंत शुभ दिन है। इसी दिन पर आगे जो भी इस सरोवर में पवित्र स्नान करेंगे, वे सब मुक्ति पायेंगे।'' सब देवताओं ने उस पद्मसरोवर की भूरि भूरि प्रशंसा की। उसका जल लेकर अपने ऊपर प्रोक्षित कर लिया। तत्पश्चात् अपने-अपने वाहनों पर चढकर सभी देवता अपने-अपने लोकों की ओर चल पडे।

46. आनंदनिलय में श्रीलक्ष्मी और श्रीवेङ्कटेश्वर

श्रीदेवी और श्रीनिवास वेङ्कटाद्रि पहुँचे। वराहस्वामी की अनुमति से अपने निवास मंदिर में प्रविष्ट हुए। सकल भूषणालंकृता पद्मावती देवी ने हरि और सिरी का स्वागत किया। ब्रह्मा भी हरि के साथ वेङ्कटनग पर पहुँचे थे। वहाँ पद्मावती द्वारा आयोजित भोज लिया। उनसे अनुमति लेकर सत्य लोक गये।

47. लक्ष्मी - वेङ्कटेश्वर का सरस - संभाषण

श्रीवेङ्कटेश्वर, लक्ष्मी और पद्मावती समेत होकर अनंत सुख पा रहे थे। ऐसे में एक दिन श्रीहरि ने लक्ष्मी से कहा - ''देवी ! आपका आना मुझे संतोषदायक ही है। पद्मावती देवी से विवाह के लिए मैं ने कुबेर से कर्ज लिया है। अब तक मैं ऋण मुक्त नहीं हुआ। इसके लिए कोई उपाय आपके पास है ?''

''स्वामी ! मैं आपके विवाहोत्सव में भाग लेने आयी थी। अगर उसी समय मुझसे धन जितना भी माँगते तो देती ! ऋण लेने की अवश्यकता ही नहीं होती थी न ! '' - यह लक्ष्मी का वचन था।

''तब तो आप मुझसे अलग हो गयी थीं। उल्टे चिंताग्रस्त भी थीं। ऐसी स्थिति में मैं आपसे धन कैसे माँगता ?'' - श्रीहरि का एक सरल - सरस वचन था।

''चलिए ! जो होना था वह हो गया है न ! अब कहिए आपको कितना धन चाहिए। लीजिए और ऋण मुक्त हो जाइए।'' - लक्ष्मी का भरोसा था।

''आपकी महत्ता क्या मैं नहीं जानता ! धन अब नहीं चाहिए। सूद क्रम से अदा करता हुआ आगे चलूँगा। केवल कलियुगान्त में पूरा ऋण चुकाऊँगा। ऋण मुक्त होकर ही हम वैकुण्ठ जायेंगे। तब तक शेषाचल निवासी बनकर ही जन - शासन करेंगे। भक्तों का पालन करेंगे। समस्त जनों के पापों का हरण करना है। करने के लिए अब बहुत काम है। अभी ऋण चुकाने की आवश्यता नहीं है।'' - यह श्रीहरि का प्रस्ताव था। आगे उन्होंने और कहा -

''देवी कलियुग के लोग पाप करेंगे। उसके कारण रोगग्रस्त होंगे। ऐसी स्थिति में मेरे पास आकर प्रार्थना करेंगे। मुझे उनकी रक्षा करनी है। उनको दुष्कर्म करने से रोकना है। उनके निवारण की प्रार्थना पर उनसे मनौतियों के रूप में धन को आकर्षित करना है। उनकी आपत्तियों को दूर कर उनसे प्राप्त धन को फिर उन्हीं को दूँगा। उस धन का कुछ अंश सूद के रूप में कुबेर को भी दे दूँगा।

रमा ! आप हमेशा की तरह सबको संपत्तियाँ देती रहिए। मैं, उस धन को आकर्षित कर अपना शासन करता रहूँगा। कलियुगांत तक ऐसे ही चलना होगा। ऋण पत्र में कलियुगांत तक की समय सीमा निर्धारित है।''

इस पर लक्ष्मी ने फिर कहा - ''मैं स्वयं चाहती हूँ कि मैं आपको धन दूँ। आप अपनी ओर से भक्तों को दीजिए। आप कह रहे हैं कि मैं लोगों को धन दूँ और उनसे आप वसूलेंगे। इसका रहस्य क्या है ? इसका आंतर्य क्या है ? कलियुग में जन कठिन हृदयी होते हैं क्या ? दान - धर्मादि नहीं करेंगे ? इसीलिए दारिद्र्य से दुःखी होंगे ? ऐसे लोगों को मैं धन कैसे दूँगी ? आप जितना चाहेंगे उतना धन मैं दूँगी। आप ही उनको दीजिए।''

तब स्वामी ने लक्ष्मी देवी को समझाने के प्रयत्न में कहा - ''लक्ष्मी! मोक्ष कामियों को मोक्ष, पुण्यात्माओं को पुण्य फल प्रदान करना ही मेरा धर्म है। उनकी रक्षा करने का भार मुझ पर है। वही मुझे प्रिय है। आप तो संपत्ति दायिनी हैं। लोगों को धन - द्रव्यादि देना ही आपका काम है। उनसे धन वसूल कर उनको आपत्तियों और विपत्तियों से मुक्त करना मेरा धर्म है। उनकी इच्छाओं को पूरना मेरा काम है। सोचो न !''

तब लक्ष्मी ने कहा - ''लोग तो कलियुग में दान - धर्म नहीं करेंगे। मैं उनको संपदाएँ क्यों प्रदान करूँ ? धन प्राप्त होते ही कलियुग के लोग दंभी और दर्प - मण्डित हो जायेंगे। क्या वे धन आपको देंगे ? कम से कम कुछ अंश ही सही देंगे क्या ?''

स्वामी ने फिर लक्ष्मी को समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा - ''लक्ष्मी ! आपका कहना सच ही है। फिर इसमें एक युक्ति है। कलियुग में लोग पाप करेंगे और रोगग्रस्त होंगे। ऐसे समय में ही वे मुझे याद करेंगे। मैं उनको स्वप्न में दर्शन देकर उनसे मनौतियों की गाठें बंधवाऊँगा। उस पर भी सूद वसूलूँगा। जब राशि बढेगी तभी वे वेङ्कटाद्रि आयेंगे। चुकायेंगे। भक्त तो हर वर्ष आयेंगे ही। उन सब

से प्राप्त धन का विभाजन करूँगा। उस धन का पुण्य और पाप राशि के अनुसार विभाजन होगा। उसी अनुपात में उसे पुण्य जनों और पापियों को पुन : दूँगा। सबसे कुल मिलाकर धर्म कार्य कराऊँगा। यह युक्ति ठीक ही है न !

इसलिए अल्प दानी को भी समृद्ध धन आपको देना होगा। मैं सभी को अभय दान देते हुए दान - पुण्य उनसे कराऊँगा। कलियुग में स्वल्प दान भी अधिक फल प्रदाता होता है। ऐसा नहीं होता है तो कलिपुरुष अधिक प्रभावशाली हो जायेगा। सकल धर्मों का नाश होगा। प्रजा का अहित ही होगा। इसी कारण मैं आपसे जन को धन देने की बात कह रहा हूँ। दूसरी ओर मुझे कलियुगांत तक यहाँ रहना ही है। अभी मैं ऋणमुक्त हो जाऊँगा तो मुझे यहाँ बेकार होकर समय काटना होगा।''

सब सुनकर लक्ष्मी देवी ने कहा - ''हे धन्यात्मा ! मैं सत्य बोल रही हूँ। लोक में दान - धर्म करनेवालों को ही मैं धन - संपत्तियाँ संप्राप्त कराऊँगी। पापियों के द्रव्य का विनाश कराऊँगी।''

इसके लिए श्रीहरि ने अपनी सहमति दी। सब लोग श्रीवेङ्कटाद्रि पर श्रीवेङ्कटेश्वर के दर्शन के लिए आने लगे। स्वामी की कृपा के पात्र हुए।

देवदर्शन ने देवताओं को यह गाथा सुनायी। तब एक और शंका सामने आयी ''हे महात्मा ! आपने कहा है कि लक्ष्मी देवी अपने पूर्व शरीर के साथ कपिलाश्रम में रह गयी हैं। वे पुनः भूलोक में कैसे पहुँची हैं ? कुछ स्पष्ट कीजिएगा।''

48. वीरलक्ष्मी का शुकाश्रम में विलसना

देवदर्शन का समाधान इस प्रकार रहा -

''लक्ष्मी देवी सौशील्यवती थी । उन्होंने अपने चित्त को विष्णु भगवान में लीन कर देह का ध्यान छोड समस्त जगत को विष्णुमय समझा था । तपस्या के समय निष्ठा रखी थी । उसी स्थिति में अनेक वर्ष बीत गये ।

एक दिन श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी ने सोचा - ''मैं ने उनके लिए तपस्या पहले की थी । यही सोचकर लक्ष्मी ने कपिल महर्षि के आश्रम में तपस्या कर रही हैं । अब उन्हें भूलोक में वापस लाने का उपाय मुझे करना है । मैं सोचकर उपाय करूँगा ।''

इस प्रकार सोचकर श्रीहरि ने लक्ष्मी के हृदय में प्रकाशमान अपने रूप को तिरोधान कर दिया । इससे उनकी ध्यान - निष्ठा भंग हुई । आँखें खोल कर भी देखा । विष्णुदेव नहीं दिखाई पडे । वे अत्यंत व्याकुल होकर कपिल मुनि के पास गयी ।

कपिल मुनि ने उनको देखकर ऐसा कहा - ''हे पद्माक्षी ! चंचलता रहित आपकी तपस्या फलित हो गयी है । अब आप यहाँ मत रहिए । शेषाद्रि के पास पद्मसरोवर तक जाइए । वहाँ शुक मुनि का पुत्र पांचरात्रागम विधि से आपकी पूजा करेंगे ।''

कपिल मुनि के आदेश के अनुसार एक दिव्य रथ पर आरुढ़ित हो मध्याह्न के समय तक पाताल को और भूमि भेद कर अपने 108 सेवकों के साथ शेषाद्रि की दक्षिण दिशा में प्रवाहमान सुवर्णमुखी नदी के तट की उत्तर दिशा में विलसित पद्मसरोवर में पहुँच गयीं । सरोवर के बीच विलसित लक्ष्मी जी को देखकर देवताओं ने उन पर पारिजात पुष्पों की

वर्षा की । लक्ष्मी के दिव्य देह की कांतियाँ समस्त जगत में प्रसारित हुईं। इसे देख श्रीनिवास गरुड पर आरुढ़ हो वहाँ पहुँचे । ब्रह्मा और रुद्र आदि भी वहाँ पहुँचे ।

49. पद्मतीर्थ की विशिष्टता

वह कार्तिक मास का शुद्ध पंचमी का दिन था । भृगुवार था । उस दिन श्रीहरि को सबसे पहले व्यूह लक्ष्मी ने दर्शन दिया । कुछ समय बाद ऐसे ही एक पवित्र दिन पर वीरलक्ष्मी का भी साक्षात्कार हुआ । इसे भी ब्रह्मादियों ने विशिष्ट पवित्र दिन माना । तब उन्होंने स्वामी से प्रार्थना पूर्वक ऐसा कहा - ''हे भगवान ! इसी पुण्य तीर्थ में व्यूह लक्ष्मी और वीर लक्ष्मी दोनों का उदय हुआ है । इस तीर्थ के लिए पद्मतीर्थ नाम सार्थक बनेगा । इस शुभ दिन के अवसर पर इस पद्मतीर्थ में पवित्र स्नान करनेवाले लोग पाप मुक्त होकर भोग - भाग्य पायेंगे ।''

यह सबका निर्णय था । भगवान ने भी माना । सब ने पद्मतीर्थ में स्नान किया । तीर्थ की आग्नेय दिशा में विश्वकर्म से मंदिर का निर्माण कराया । छाया शुक से पांचरात्र आगम विधि से पूजाएँ संपन्न करायीं ।

श्रीनिवास ने अपनी ग्रीवा में विराजमान फूल माला को निकाल कर देवी के कंठ में पहनाया । शुकाश्रम को अग्रहार (ब्रह्मणों का निवास गाँव) के रूप में रूपायित कर छाया शुक को सौंपा । सबका उपयुक्त सम्मान करके, अपने-अपने स्वस्थान पर जाने का आदेश भी दिया ।

तत्पाश्चात् स्वामी ने वीर लक्ष्मी से कहा - ''हे लक्ष्मी ! सबसे पहले मैं ने आपका रूप देखा । आप व्यूह लक्ष्मी के साथ आकर वेङ्कटाद्रि पर मेरे साथ रह सकती हैं ।''

तब देवी ने उत्तर में कहा - ''हे प्राणनाथ ! यह स्थल आपके द्वारा मेरे लिए की हुई तपस्या से परम पावन बना स्थल है । यह दिव्य स्थल है । यह श्रीकर स्थान है । मैं यहीं रहूँगी । आप मेरे हृदय में रहते हुए भी व्यूह लक्ष्मी को उर पर स्थान दे सकते हैं । मुझे यहीं रखकर मेरी रक्षा का भार लीजिए । यही मेरे लिए आपका वरदान होगा । मेरे लिए आपकी कृपा ही अत्यंत महत्वपूर्ण है । मेरे आपके साथ न आने की चिंता ही मत रखिएगा । व्यूह लक्ष्मी के रूप में मैं आपके उर पर ही रहूँगी । तब आपको कोई कमी नहीं होगी । पद्मावती को समुचित रूप से पास रखिए । पहाड पर आनेवाले भक्तों को वरदान दीजिएगा।'' - वीरलक्ष्मी ने स्वामी के चरणों को छूकर नमस्कार किया ।

स्वामी ने वीर लक्ष्मी की बात मानी । व्यूह लक्ष्मी और पद्मावती दोनों को लेकर वेङ्कटाद्रि पहुँचे ।

आश्रम में छायाशुक ने भक्तिपूर्वक वीर लक्ष्मी के महोत्सव की व्यवस्था की । वे उसी आश्रम में ठहरकर सबको समस्त संपत्तियाँ प्रदान करती हुई रह गयीं ।

[मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा द्वारा रचित 'श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यं' शीर्षक काव्य के आधार पर इस ग्रंथ की रचना हुई है - मूल लेखक]

* * *